(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का आध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मूल्य ३) सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई । एक अङ्क का ।)

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पादक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

वर्ष ९] मथुरा, १ अगस्त सन् १९४८ ई० [अंक

आइए ! आत्म शक्ति द्वारा अपने अभावों की पूर्ति करें।

आपको अपने जीवन में अनेक प्रकार की आवश्यकताएं अनुभव होती हैं, अनेक अभाव प्रतीत होते हैं और अनेक इच्छाएं अतृप्त दशा में अन्तःकरण में कोलाहल कर रही हैं। इस प्रकार का अशांन्त एवं उद्विग्न जीवन जीने से क्या लाभ ? विचार कीजिए कि इनमें कितनी इच्छाएं वास्तविक हैं और कितनी अवास्तविक ? जो तृष्णाएं मोह ममता और भ्रम अज्ञान के कारण उठ खड़ी हुई हों उनका विवेक द्वारा शमन कीजिए। क्योंकि इन अनियंत्रित वासनाओं की पूर्ति, तृप्ति और शान्ति संभव नहीं। एक को पूरा किया जायगा कि दस नई उपज पड़ेंगी।

जो आवश्यकताएं वास्तविक हैं। उनको प्राप्त करने के लिए अपने पुरुषार्थ को एकत्रित करके उसे उचित उपयोग कीजिए। पुरुष का पौरुष इतना शक्तिशाली तत्व है कि उसके द्वारा जीवन की सभी वास्तविक आवश्यकताएं आसानी से पूरी होसकती हैं। हममें से अधिकांश का पौरुष सोया हुआ रहता है। क्योंकि उसे प्रेरणा देने वाली अग्नि आत्म शक्ति—मंद पड़ी रहती है। उस चिनगारी को जगाकर अपने शक्ति भण्डार को चैतन्य किया जासकता है। यह सचेत पौरुष हमारी प्रत्येक सच्ची आवश्यकता को पूरी करने में पूर्णतया समर्थ है। आइए, अभावग्रस्त चिन्तातुर स्थिति से छुटकारा पाने के लिए तृष्णाओं का विवेक द्वारा शमन करें। और आवश्यकता को पूर्ण करने वाले पौरुष को जगाने के लिए आत्मशक्ति की चिनगारी को जगावें।

सुख, सिद्धि और समृद्धि प्राप्ति के कुछ नियम।

(महात्मा गान्धी)

—+—

(१) अगर आप विवाहित हैं तो याद रखिए कि पत्नी आपकी साथिन, मित्र, और सहकारिणी है। विषय-तृप्ति का एक साधन नहीं।

(२) आत्म-संयम ही मनुष्य के जीवन का नियम है। अतः संभोग उसी हालत में उचित कहा जा सकेगा जब दोनों ही के अन्दर उसकी इच्छा पैदा हो और वह भी तब, जब कि वह उन नियमों के अनुसार किया गया हो, जिन्हें कि पति-पत्नी दोनोंने भलीप्रकार समझकर बनाया हो।

(३) अगर आप अविवाहित हैं तो आपका अपने प्रति, समाज के प्रति और अपनी भावी जीवन-संगिनी के प्रति यह कर्त्तव्य है कि आप अपने को—अपने चरित्र को—पवित्र बनाये रखें। अगर आपके अन्दर सचाई और वफादारी की ऐसी भावना पैदा हो गई हो, तो यह भावना एक दुर्भेद्य कवच बनकर अनेक प्रलोभनों से आपकी रक्षा कर सकेगी।

(४) हमारे हृदय के अन्दर छिपी हुई उस परमात्म-शक्ति का हमें सदा स्मरण रखना चाहिए। चाहे हम उसे कभी देख न सकते हों, परन्तु हम अपनी अन्तरात्मा के अन्दर सदा यह अनुभव करते रहते हैं कि वह हमारे प्रत्येक बुरे विचार को भलीभांति देख रही है। यदि आप उस शक्ति का ध्यान करते रहें तो आप देखेंगे कि वह शक्ति हमेशा आपकी सहायता के लिए तैयार रहती है।

(५) संयमी जीवन के नियम, विलासी जीवन के नियमों से अवश्य ही भिन्न होंगे। इसलिए उचित है कि आपका मिलने-जुलने वाला समाज अच्छा हो, आप सात्विक साहित्य पढ़ें, आपके विनोदस्थल अच्छे वातावरण से परिपूर्ण हो और खान-पान में आप संयत हों। आपको हमेशा सत्-पुरुषों और सच्चरित्र लोगों की ही संगति करनी चाहिए। आपको दृढ़ता-पूर्वक उन पुस्तकों उपन्यासों और मासिक पत्रों का पढ़ना छोड़ देना चाहिए जिनके पढ़ने से आपकी कुवासनाओं को उत्तेजना मिले। आप हमेशा उन्हीं पुस्तकों को पढ़िए जिनसे आपके मनुष्यत्व की रक्षा तथा पुष्टि हो। आपको किसी एक अच्छी पुस्तक को अपना आधार और मार्ग-प्रदर्शक बना लेना चाहिए।

(६) सिनेमा और नाटकों से दूर ही रहना चाहिए। मनोविनोद तो वह है जिससे हमारे चरित्र का पतन न होकर, उसके द्वारा वह एक अच्छे सांचे में ढल जाता हो। अतः आपको उन्हीं भजनमंडलियों में जाना चाहिए, जिनके भजनों का भाव और संगीत की ध्वनि आत्मा को ऊपर उठाती हो।

(७) आपको भोजन स्वाद-तृप्ति के लिए नहीं, बल्कि क्षुधा-तृप्ति के लिए करना चाहिए। विलासी पुरुष खाने के लिए जीता है किन्तु संयमी पुरुष जीवित रहने के लिए खाता है। अतः आप को सब तरह के उत्तेजक मसाले, शराब आदि नशीले पदार्थों से, जिनसे कि आदमी के अन्दर उत्तेजना पैदा होती है, परहेज करना चाहिए। और मादक-द्रव्य आदि से भी बिल्कुल बचना चाहिए जिनसे मस्तिष्क पर ऐसा कुप्रभाव पड़ता है कि भले-बुरे के पहचानने की शक्ति नष्ट हो जाती है। आपको अपने भोजन की मात्रा और समय भी निश्चित और नियमित कर लेना चाहिए जब आपको ऐसा मालूम पड़े कि आप विषय-वासनाओं के वशीभूत होते जा रहे हैं तो पृथ्वी पर सर को टेककर भगवान के दरबार में सहायता के लिए पुकारिए। मेरे लिए तो ऐसे समय पर रामनाम ने अव्यर्थ दवा का काम दिया है।

(८) प्रति दिन तड़के उठकर खुली हवा में, खूब तेजी के साथ घूमा कीजिए। रात को खाना खाने के बाद, सोने से पूर्व, टहलिए भी।

—+—

मथुरा १ अगस्त सन् १९४८ ई०

शास्त्र और धर्म की विवेचना।

यह समय चला गया जब 'शास्त्र' शब्द से जो ग्रन्थ सम्बोधित किये जाते थे, उन्हें किसी "अलौकिक" या 'ईश्वरीय' शक्ति की देन कह कर उनके प्रति समाज में लोकोत्तर श्रद्धा का आविर्भाव किया जा सकता था। साधारणतः आज संसार में जितने 'शास्त्र-ग्रंथ' हैं उन्हें किसी न किसी 'मानव बुद्धि' से ही उत्पन्न हुआ समझा जाता है। एक शास्त्र का ही एक वाक्य है कि "शास्त्र को पुरुष उत्पन्न करते हैं, पुरुष को शास्त्र नहीं।" कुछ लोग शास्त्रों के सम्बन्ध में कहते हैं कि वहां बुद्धि की गति नहीं है किन्तु वे यह भूलते हैं कि 'यहां बुद्धि की गति है, वहां नहीं है' इस बात का निर्णय भी बुद्धि द्वारा ही किया जाता है। बुद्धि की कोई निश्चित सीमा नहीं है। यदि कहा जाय कि शास्त्रकार ऋषियों की बुद्धि हमारी बुद्धि से अच्छी थी तो इसका निर्णय भी हमारी अपनी बुद्धि ही करती है, विचार का खण्डन भी विचार ही करता है। कहा गया है कि कोई अपनी छाया और बुद्धि को नहीं नाप सकता इसलिये किसी के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिये बुद्धि ही सर्वोपरि साधन है।

गीता में कहा गया है कि कार्य-अकार्य का निर्णय करने के लिये शास्त्र प्रमाण है। किन्तु प्रश्न यह है कि किस शास्त्र द्वारा निर्णय किया जाय किससे नहीं? प्रत्येक मत और विचार धारा के लिये अलग-अलग शास्त्र हैं। यहूदियों के लिये बाइबिल का पूर्वार्ध 'ओल्डटेस्टामेन्ट' अपौरुषेय है तो ईसाइयों के लिये उसका उत्तरार्ध 'न्यूटेस्टामेंट' ब्रह्मवाक्य है। जैनियों के लिये जैनागम-सुत्त, बौद्धों के लिये 'त्रिपटिक' और इसी प्रकार हिन्दू आदि अन्य धर्मावलम्बियों के लिये अपने धर्म-ग्रन्थ सर्व श्रेष्ठ हैं। हिन्दुओं में भी फिर अनेक मत-मतान्तर हैं। कोई वैदिक धर्मावलम्बी है तो कोई सनातनी। फिर वेदानुयायियों में भी बड़े मतभेद हैं। कोई ऋग्वेदी है, कोई अथर्ववेदी, कोई सामवेदी है तो कोई यजुर्वेदी। यहां तक कि अन्य तीन अथर्ववेद को बहुत अपवित्र मानते हैं और उसे वेदों की पंक्ति में से ही उठा दिया है तथा 'त्रिवेदी' ही भारत में मान्य रह गई। ऋक् और यजुर्वेद के अनुयायी सामवेद को भी अपवित्र मानते हैं जब कि गीता में उसकी श्रेष्ठता दिखाने के लिये कहा गया है कि 'वेदों में सामवेद मैं ही हूं।' कहने का तात्पर्य यह कि विभिन्न शास्त्रों के मत और विचार धारा इतनी परस्पर विरोधी है कि कौन मान्य है कौन अमान्य इसका निर्णय बुद्धि द्वारा ही किया जा सकता है। इसीलिये विभिन्न शास्त्रों में मतविशेष प्रति पादित करते समय स्थान-स्थान पर 'बुद्धि' को भी महत्व दिया गया है। गीता का द्वितीय अध्याय तो एक मात्र बुद्धि की महिमा से ही भरा हुआ है। अन्य स्थानों पर भी गीता में 'बुद्धि' शब्द का प्रयोग केवल 'आत्मा' और 'अहं' शब्द को छोड़ कर सबसे अधिक स्थानों पर किया गया है। गायत्री मंत्र में भी भगवान से शास्त्र नहीं मांगा गया है। वहां भी 'भगवान मुझे सद्बुद्धि दे' ऐसी प्रार्थना की गई है। क्यों कि सद्बुद्धि

मिलने पर अनेक शास्त्रों का निर्माण किया जा सकता है।

'शास्त्र' के अन्धानुयाइयों की ओर से कहा जाता है कि शास्त्रों में जो परस्पर विरोध है, उसका निराकरण शास्त्रों की ही पद्धति से करके 'शास्त्रीय' सिद्धान्त का निर्णय करना चाहिये। किन्तु यह निर्णय भी तो मानव-बुद्धि द्वारा ही किया जायेगा। महाभारत में एक स्थान पर कहा गया है।

"तर्कोऽप्रतिष्ठः, श्रुतयोविभिन्नः,
नैको ऋषिः यस्य वचः प्रमाणं।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां,
'महाजनो' येन गतः स पन्थाः।

अर्थात् तर्क की कोई सीमा नहीं है, श्रुतियां (चिरकालीन परम्परा से सुनी हुई बात) अनेक प्रकार की और परस्पर विरोधी हैं,अतएव किसी भी ऋषि का वचन प्रमाण नहीं माना जासकता। धर्म का तत्व तो मनुष्य के हृदय में (जहां से उसे बुद्धि की प्रेरणा मिलती है) छिपा हुआ है। 'महाजन' (पूरे समाज का बहुमत) जिस मार्ग पर चले वही सच्चा मार्ग है। यहां महाजन' का अर्थ महापुरुष इसलिये नहीं किया जासकता कि ऊपर कहा गया है कि किसी भी ऋषि का वाक्य प्रमाण नहीं। क्या ऋषि भी महापुरुष नहीं होते? इसीलिये यहां 'महाजन' का अर्थ समाज का बहुमत या 'जनता' कहा गया है जो आज की गुजराती भाषा में प्रयोग किया जाता है।

सारांश यह है कि कोई ग्रन्थ कितना ही पूजनीय हो और उसकी कितनी भी प्रतिष्ठा बताई गई हो, जब उसमें विचार-विरोध उत्पन्न होता है तो अंत में निर्णय के लिये बुद्धि की ही शरण लेनी पड़ती है। 'बुद्धि' 'शास्त्र' से ऊपर है क्यों कि 'बुद्धि' 'शास्त्र' का निर्माण करती है, 'शास्त्र' 'बुद्धि' का निर्माण नहीं करता। 'बुद्धि-हीन के लिये 'शास्त्र' का मूल्य उतना ही है जितना अंधे के लिये दर्पण का। क्योंकि जिस प्रकार अन्धा दर्पण में अपना मुँह नहीं देख सकता उसी प्रकार बुद्धि-हीन विवेक-विचार से 'शास्त्र' को पढ़ और जांच नहीं सकता।

जब बिना बुद्धि की कसौटी पर खरा उतरे कोई 'शास्त्र' प्रमाण नहीं हो सकता तो 'शास्त्रों' में प्रतिपादित 'धर्म' का भी बुद्धि की कसौटी पर खरा उतरना आवश्यक है। 'महाजनो येन मतः स पंथ्याः, के अनुसार आज के मानव-समाज का यह निश्चित मत है कि जिससे समाज का कल्याण हो, मानवता का विकाश हो, अच्छे ज्ञान और विज्ञान की उन्नति हो तथा संसार के समस्त जन-समुदाय को सुख मिले,वही धर्म है।

ऋषियों और शास्त्रकारों ने अपने अपने समय और परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न शास्त्रों में 'धर्म' का प्रतिपादन किया है। उन्होंने अपनी बुद्धि के अनुसार अनेक तत्व की बातों का चयन अपने ग्रन्थों में किया है। उनमें से आज के समय और परिस्थितियों के अनुकूल पात्र के अनुसार सामिग्री निकालना और आवश्यकता के अनुसार उन्हें बदलना मनुष्य की बुद्धि काम है।

परिस्थितियों और उपयोग के अनुसार ग्रहण किये जाने के कारण "धर्म" कोई एकान्तिक अत्यान्तिक, अटल, अचल और अपरिवर्तनीय वस्तु नहीं है। ऊपर धर्म की 'लोकोपकारी' आदि जो परिभाषायें बताई गई है उसके अनुसार हम देखते हैं कि समाज के प्रत्येक सदस्य का 'धर्म, एक नहीं हो सकता। फौजी सिपाही का धर्म एक होगा तो किसान का दूसरा, अध्यापक का तीसरा और दुकानदार का चौथा होगा। एक ही आदमी का धर्म अच्छे दिनों में एक होगा तो बुरे दिनों में दूसरा। किस अवस्था में किस व्यक्ति का क्या धर्म है? इसका निर्णय अच्छी बुद्धि द्वारा ही ठीक ठीक किया जा सकता है। एक कथा है कि जब ऋषि लोग इस लोक से जाने लगे तो मनुष्यों ने उनसे पूंछा कि अब हम लोगों को कठिनाई के समय सच्चा मार्ग कौन दिखायेगा? तब ऋषियों ने उनको 'तर्क, दिया

और कहा का भविष्य में यही तुम्हारा ऋषि होगा। इस कथा का यही तात्पर्य है कि युग और परिस्थिति के अनुसार अपनी बुद्धि द्वारा अपना कर्त्तव्य निश्चित करो। अंध विश्वास के साथ पुरानी परम्परा की लकीर पीटना छोड़ दो।

उपरोक्त व्याख्या के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मानव-कल्याण के लिये सम सम्य पर कवियों और आप्त पुरुषों ने जो स वाक्य संग्रहीत किये हैं वे शास्त्र हैं किन्तु प्रत्ये रिथति में उन पर अमल करते समय हमें बु कोही प्रधानता देनी चाहिये। क्योंकि 'य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किं ?'

—+—

पितर-तर्पण।

(आचार्य विनोवा)

मनुष्य, देव और पशु जाति के मध्य की जाति है। इसे इन दोनों को जोड़ने वाली कड़ी भी कही जा सकती है। मनुष्य अगर चाहे तो भयंकर से भयंकर पशु तक बन सकता है और इसी तरह सर्वोच्च देव भी। अनुभव से भी मनुष्य को पशु बनते देखा गया है और देव भी। जिस प्रकार पशु बनने की शक्ति उसमें है उसी प्रकार देव बनने की भी शक्ति है इसे अनेकों ने अनुभव किया है। नर से नारायण बनने की बात असम्भव नहीं है। अनेकों महापुरुषों ने इसे करके दिखा दिया है।

आकाश में अनेकों तारागण भरे पड़े हैं, परन्तु आंखों से सबके दर्शन नहीं होते। कुछ एक तारे दूरबीन से दिखाई दे जाते हैं पर बहुत से तारे ऐसे भी बच रहते हैं जो दूरबीन से भी नहीं दिखाई देते। जीवन भी आकाश की तरह है। इसमें जीवन के अनन्त ठोस सिद्धान्त भरे पड़े हैं बुद्धि की सहायता से कुछ थोड़े से सिद्धान्त जाने जा सकते हैं। और तपस्या की दूरबीन लगाने पर कुछ और सूक्ष्म सिद्धान्त जान लिए जाते हैं। इस तरह के सूक्ष्म सिद्धान्तों को जो जान लेते हैं, या खोज निकालते हैं उन्हें ऋषि कहते हैं। ऋषि का अर्थ है मन्त्र द्रष्टा—मंत्र देखने वाला। सिद्धान्त परखने वाला। मंत्र परख करके ही ऋषि चुप नहीं हो जाते सिर्फ उच्चार से ही कोई लाभ नहीं। उच्चार के साथ आचार की भी आवश्यकता होती है।

आजकल समझदारी और कारगुजा: उच्चार और आचार की एक दूसरी से देखा दे नहीं है। बूढ़ों का अनुभव और जवानों का उत्स अलग अलग रह रहे हैं। स्त्रियों की समझद और पुरुषों की कारगुजारी अलग अलग हो हैं। ब्राह्मणों के शास्त्र और अब्राह्मणों की व में दरार पड़ गई है। हिन्दुओं की नीति निपुण और मुसलमानों के जोश में एकत्व नहीं रह संन्यासी के धर्म और गृहस्थ के कर्म का : खत्म होगया। अगर यह अवस्था न सुधर कथनी और करनी का योग न हुआ तो मनु सफलता से कोसों दूर रहेगा।

जब ज्ञानी लोग कर्म से थकने लगते हैं कर्म करते हुए उन्हें शर्म आने लगती है राष्ट्र का पतन आरंभ होता है। गिबन ने र के इतिहास में इस नियम को लिख रखा भारत के सन्त, कवि और आचार्यों ने भी इ बात को एक स्वर से कहा है। 'जो कर्म छोटा समझ कर चलते हैं, वे ज्ञानी नहीं, गंर हैं।' यह बात ज्ञानियों के राजा ज्ञानेश्वर कही है।

ज्ञान न तो कर्म से डरता है और न व करने को अपनी शान के खिलाफ समझता मनुष्य जैसे जैसे ज्ञान में घुलता जाता है वैसे ही वह कर्म के रंग में रंगता जाता है। ज्ञान

उदय होने से कर्म का झंझट मिट जाता है। लेकिन झंझट मिटने का अर्थ कर्म का नाश नहीं है बल्कि ज्ञान के पहले तक जो कर्म झंझट मालूम होते थे वे ज्ञान का उदय होने पर सरल हो जाते हैं। भगवान कृष्ण ने इस सम्बन्ध में कहा है कि ज्ञान का उदय होने पर अहंकार का नाश हो जाता है तब उसमें लोगों के लिए सहानुभूति पैदा हो जाती है और साहस तथा उत्साह उत्पन्न हो जाने के कारण भय और लज्जा समाप्त हो जाते हैं। तब ही तो ज्ञानी दुगुनी शक्ति से कर्म करने लगता है। भूतदया के कारण वह लोक संग्रह का अभ्यासी हो जाता है। बल्कि लोगों को पदार्थ पाठ पढ़ाने के लिए उसका कर्म करना तो कर्त्तव्य ही हो जाता है।

तब ज्ञान सीख कर उसे आचार में लाना, उन ज्ञानियों और ऋषियों की परम्परा को कायम रखना ही तो सच्चा तर्पण है। ज्ञान को कर्म से मुक्त कर देने वाले ऋषि तर्पण से ही मानव कल्याण मार्ग की सीढ़ी पार करता है।

साधक की साधना का फल।

(श्री अरविन्द)

मानव जाति को दिन प्रति दिन शनैः शनैः उन्नति के पथ पर अग्रसर करना, एक उन्नत-पथ से दूसरे उन्नत पथ पर पहुंचाना समुच्चय की दैवी शक्ति तथा तुरीय के महत् आनन्द द्वारा मनुष्य को देवता की भांति बनाना ही भगवान की लीला का उद्देश्य है। अनन्तयुग से अनेक प्रकार के रूप धारण करके भगवान इस प्रकार की लीला करते आरहे हैं। उनकी यह लीला इस विराट विश्व में अविच्छिन्न रूप से अनन्त काल से होती चली आती है। उन्होंने स्वर्ग को मर्त्य बना दिया है और इस पृथ्वी पर अनन्त धाराओं द्वारा अमृत वर्षाया है। इसलिए जब तक पृथ्वी और स्वर्ग एक न होजाय, उद्देश्य की सिद्धि न हो जाय साधक की साधना न पूर्ण हो सकती है और न चरितार्थ हो सकती है। अतः मानव समाज के उद्धार का एक ही मार्ग है और वह मार्ग है आत्मसाक्षात्कार एवं शक्ति साधना। क्योंकि बिना इनके जो अशुभ है उससे मुक्त नहीं हुआ जा सकता। और जब तक अशुभ से मुक्ति नहीं मिलती आत्मा पवित्र नहीं बन सकती। आत्मा के पवित्र बने बिना इस संसार में प्रकाश फैलाने के लिए साधक माध्यम भी नहीं बन सकता। साधक को तो ईश्वर की ज्योति से सम्पन्न होकर संसार की सभी अशुद्धताओं और कुसंस्कारों को दूर करना होगा। सैकड़ों व हजारों प्राणियों के बीच ज्ञानव शक्ति की ज्योति फैलाकर उनमें से अविद्या को दूर करते हुए उनके उद्धार का कार्य प्रत्येक साधक को करना है जिससे प्रत्येक व्यक्ति भगवान की लीला का जड़ यंत्र नहीं, चेतन यन्त्र बन सके। भागवत धर्म में दीक्षित होसके। सच्चिदानन्द के अगाध सागर में निमग्न होसके।

इस साधना के लिए साधक को उस पथ पर चलने की आवश्यकता है जहां से ईसा की पवित्रता व पूर्णता, मुहम्मद का आत्म-विश्वास और आत्म—समर्पण, श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रेम व आनन्द तथा रामकृष्ण परमहंस का संसार के सभी धर्मों में समन्वय व एकीकरण करने की बुद्धि व अतिमानव तत्व की प्राप्ति हो।

साधक इस नवीन धर्म के पवित्र स्रोत को मानव जाति के बीच में प्रवाहित करके, उनकी आत्म शुद्धि करके उनकी आत्मा का जिस समय उद्‌बोधन करावेंगे उसी समय उन्हें सिद्धि मिलेगी और उसी समय पृथ्वी पर स्व-राज्य की स्थापना होगी।

कुण्डलिनी का परिचय।

शरीर में अनेक साधारण और अनेक असाधारण अंग हैं। असाधारण अंग जिन्हें 'मर्म स्थान' भी कहते हैं केवल इसीलिए मर्म स्थान नहीं कहे जाते कि वे बहुत सुकोमल एवं उपयोगी होते हैं वरन् इसलिए भी कहे जाते हैं कि इनके भीतर गुप्त आध्यात्मिक शक्तियों के महत्वपूर्ण केन्द्र होते हैं। इन केन्द्रों में वे बीज सुरक्षित रूप से रखे रहते हैं जिनका उत्कर्ष, जागरण होजाय तो मनुष्य कुछ से कुछ बन सकता है। उसमें आत्मिक शक्तियों के स्रोत उमड़ सकते हैं और उस उभार के फल स्वरूप वह ऐसी अलौकिक शक्तियों का भण्डार बन सकता है जो साधारण लोगों के लिए "अलौकिक आश्चर्य" से कम प्रतीत नहीं होतीं।

ऐसे मर्म स्थलों में मेरु दंड का—रीढ़ की हड्डी का—प्रमुख स्थान है। यह शरीर की आधार शिला है। यह मेरुदंड छोटे छोटे तेतीस अस्थिखंडों से मिलकर बना है। इस प्रत्येक खंड में तत्व दर्शियों को ऐसी विशेष शक्तियां परिलक्षित होती है जिनका संबंध दैवी शक्तियों से है। देवताओं में जिन शक्तियों का केन्द्र होता है वे शक्तियां भिन्न २ रूप से मेरुदंड के इन अस्थि खंडों में पाई जाती हैं, इसलिए यह निष्कर्ष निकाला गया है कि मेरु दंड तेतीस देवताओं का प्रतिनिधित्व करता है। आठ वसु, बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, इन्द्र और प्रजापति इन तेतीसों की शक्तियां उसमें बीज रूप से उपस्थित रहती हैं।

इस पोले मेरु दंड में शरीर विज्ञान के अनुसार अनेकों नाड़ियां हैं और वे विविधि कार्यों में नियोजित रहती हैं। अध्यात्म विज्ञान के अनुसार उसमें तीन प्रमुख नाड़ियां हैं (१) इड़ा (२) पिंगला (३) सुषुम्ना। यह तीन नाड़ियां मेरु-दंड को चीरने पर प्रत्यक्ष रूप में आंखों द्वारा नहीं देखी जासकती इनका संबंध सूक्ष्म जगत से है। यह एक प्रकार के विद्युत प्रवाह हैं। जैसे बिजली से चलने वाले यंत्रों में नेगेटिव और पाजेटिव—ऋण और धन—धाराएं दौड़ती हैं और उन दोनों का जहां मिलन होता है वहीं शक्ति पैदा होजाती है। इसी प्रकार इड़ा को निगेटिव पिंगला को पाजेटिव कह सकते हैं। इडा को चन्द्रनाड़ी और पिंगला को सूर्य नाड़ी भी कहा है। मोटे शब्दों में इन्हें ठंडी और गरम धारा कहा जासकता है। दोनों के मिलने से जो तीसरी शक्ति उत्पन्न होती है उसे सुषुम्ना कहते हैं। प्रयाग में गंगा और यमुना मिलती हैं। इ[illegible] मिलन से एक तीसरी सूक्ष्म सरिता और विनि[illegible]मित होती है जिसे सरस्वती कहते हैं। इ[illegible] प्रकार दो नदियों से त्रिवेणी बन जाती है। मेरुदं[illegible] के अन्तर्गत भी ऐसी ही अध्यात्मिक त्रिवेणी है इड़ा पिंगला की दो धाराएं मिलकर सुषुम्[illegible] की सृष्टि करती हैं और एक पूर्ण त्रिवर्ग ब[illegible] जाता है।

यह त्रिवेणी ऊपर मस्तिष्क के मध्य के[illegible] से—ब्रह्मरंध्र से—सहस्रार कमल से—संबंधि[illegible] है और नीचे मेरुदंड का जहां नुकीला अंत वहां—लिंग मूल और गुदा के बीच के 'सीव[illegible] स्थान की सीध में पहुंच कर रुक जाती है यह इस त्रिवेणी का आदि अन्त है।

सुषुम्ना नाडी के भीतर एक और त्रि[illegible] है। उसके अन्तर्गत भी तीन अत्यन्त सू[illegible] धाराएं प्रवाहित होती है जिन्हें बज्रा चित्र[illegible] और ब्रह्मनाडी कहते हैं। जैसे केले के तने [illegible] काटने पर उसमें एक के भीतर एक परत दिख पड़ता है वैसे ही सुषुम्ना के भीतर बज्रा है, ब[illegible] के भीतर चित्रिणी है और चित्रणी के भी ब्रह्मनाडी है। यह ब्रह्मनाड़ी, अन्य सब नाड़ि[illegible] का मर्मस्थल केन्द्र एवं शक्ति सार है। इस [illegible]

मर्म की सुरक्षा के लिए ही उस पर इतने परत चढ़े हुए हैं।

यह ब्रह्मनाड़ी मस्तिष्क के केन्द्र में—ब्रह्मरंध्र में—पहुंच कर हजारों भागों में चारों ओर फैल जाती है। इसीसे उस स्थान को सहस्र दल कमल कहते हैं। विष्णु की शय्या शेष जी के सहस्र फनों का अलंकार भी इस सहस्रदल कमल से ही लिया गया है। भगवान बुद्ध आदि अवतारी पुरुषों के मस्तक पर एक विशेष प्रकार के गुंजलक दार बालों का अस्तित्व हम उनकी मूर्तियों अथवा चित्रों में देखते हैं, यह इस प्रकार के बाल नहीं है वरन् सहस्र दल कमल का कलात्मक चित्र है। यह सहस्र दल सूक्ष्म लोकों से, विश्व व्यापी शक्तियों से संबंधित हैं। रेडियो-ट्रांसमीटर के ध्वनि ग्राहक और ध्वनि विस्तारक तन्तु फैलाये जाते हैं—जिन्हें 'एरियल' कहते हैं। इन तन्तुओं के द्वारा सूक्ष्म आकाश में ध्वनि को फेंका जाता है और बहती हुई तरंगों को पकड़ा जाता है। मस्तिष्क का 'एरियल' भी सहस्रार कमल है। उसके द्वारा परमात्म सत्ता की अनन्तों शक्तियों को सूक्ष्म लोक में से पकड़ा जाता है। जैसे भूखा अजगर जब जाग्रत होकर लम्बी सांसें खींचता है तो आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को अपनी तीव्र शक्ति से जकड़ लेता है और वे मन्त्र मुग्ध की तरह खिंचते हुए अजगर के मुँह में चले जाते हैं, उसी प्रकार जागृत हुआ, सहस्र मुखी शेष नाग—सहस्रार कमल-अनन्त प्रकार की सिद्धियों को लोक लोकान्तरों में खींच लेता है। जैसे कोई अजगर जब क्रुद्ध होकर विषैली फुँसकार मारता है तो एक सीमा तक वायुमण्डल को विषैला कर देता है उसी प्रकार जागृत हुए सहस्रार कमल द्वारा शक्ति शाली भावना तरंगें प्रवाहित करके साधारण जीव-जन्तुओं एवं मनुष्यों को ही नहीं वरन् सूक्ष्म लोकों की आत्माओं को भी प्रभावित और आकर्षित किया जासकता है। शक्ति शाली ट्रान्स मीटर द्वारा किया हुआ अमेरिका का ब्राडकास्ट भारत में सुना जाता है! शक्ति शाली सहस्रार द्वारा निक्षेपित भावना प्रवाह भी लोक लोकान्तरों के सूक्ष्म तत्वों को हिला देता है।

अब मेरुदंड के नीचे के भाग को, मूल को, लीजिए। सुषुम्ना के भीतर रहने वाली तीन नाडियों में सबसे सूक्ष्म ब्रह्मनाड़ी मेरुदंड के अन्तिम भाग के समीप एक काले वर्ण के षट्कोण वाले परमाणु से लिपट कर बँध जाती है। छप्पर को मजबूत बांधने के लिए दीवार में खूँटे गाढ़ते हैं और उन खूँटों में छप्पर से संबंधित रस्सी को बांध देते हैं। इसी प्रकार उस षट्कोण कृष्ण वर्ण परमाणु से ब्रह्मनाड़ी को बांधकर इस शरीर से प्राणों के छप्पर को जकड़ देने की व्यवस्था की गई है।

इस कृष्ण वर्ण, षट्कोण परमाणु को अलंकारिक भाषा में कूर्म कहा गया है क्योंकि उसकी आकृति कछुए जैसी है। पृथ्वी कूर्म भगवान पर टिकी हुई है इस अलंकार का तात्पर्य जीवन भूमि के उस कूर्म आधार पर टिके हुए होने से है। शेष नाग के फन पर पृथ्वी टिकी हुई है इस उक्ति का आधार ब्रह्मनाड़ी की वह आकृति है जिसमें वह इस कूर्म से लिपट कर बैठी हुई है, और जीवन को धारण किये हुए हैं। यदि वह अपना आधार त्याग दे तो जीवन भूमि के चूर २ होजाने में क्षण भर की भी देर न समझनी चाहिए।

कूर्म से ब्रह्मनाड़ी के गुंथन स्थल को आध्यात्मिक भाषा में कुंडलिनी कहते हैं। जैसे काले रंग के आदमी का नाम 'कलुआ' भी पड़ जाता है उसी प्रकार कुंडलाकार बनी हुई इस आकृति को 'कुण्डलिनी' कहा जाता है। यह साढ़े तीन लपेटे उस कूर्म में लगाये हुए है और मुँह नीचे को है। विवाह संस्कारों में इसी की नकल करके 'भांवरि या फेरे' होते हैं। साढ़े तीन (सुविधा की दृष्टि से चार) परिक्रमा किये जाने और मुँह नीचा रखे जाने का विधान उस कुण्डलिनी के आधार पर ही रखा गया है क्योंकि भावी जीवन

निर्माण की व्यवस्थित आधार शिला, पति पत्नी की कूर्म और ब्रह्मनाड़ी मिलन जैसा ही महत्व पूर्ण है जैसा कि शरीर और प्राण को जोड़ने में कुंडलिनी का महत्व है।

इस कुण्डलिनी की महिमा शक्ति और उपयोगिता इतनी अधिक है कि उसको भली प्रकार समझने में मनुष्य की बुद्धि लडखडा जाती है। भौतिक विज्ञान के अन्वेषकों के लिए आज "परमाणु,, एक पहेली बना हुआ है। उसके तोड़ने की एक क्रिया मालूम होजाने का चमत्कार दुनियां ने प्रलयंकर 'परमाणुबम, के रूप में देख लिया है। अभी उसके अनेकों विध्वंसक और रचनात्मक पहलू बाकी हैं। सर आर्थर का कथन है कि—"यदि परमाणु शक्ति का पुरा ज्ञान और उपयोग मनुष्य को मालूम होगया तो उसके लिए कुछ भी असंभव न रहेगा वह सूर्य के टुकड़े २ करके उसे गर्द में मिला सकेगा और जो चाहेगा वह वस्तु या प्राणी मन माने ढंग से पैदा कर लिया करेगा। ऐसे ऐसे यंत्र उसके पास होंगे जिनसे सारी पृथ्वी एक मुहल्ले में रहने वाली आबादी की तरह होजायगी। कोई व्यक्ति चाहे कहीं क्षण भर में आजासकेगा और चाहे जिससे चाहे जो वस्तु ले दे सकेगा तथा देश देशान्तरों में स्थित लोगों से ऐसे ही घुट घुटकर वार्तालाप कर सकेगा जैसे दो मित्र आपस में बैठे बैठे गप्पें लड़ाते रहते हैं। जड़ जगत की एक परमाणु की शक्ति इतनी कूती जारही है कि उसकी महत्ता को देखकर आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। फिर चैतन्य जगत का एक स्फुलिंग जो जड़ परमाणु की अपेक्षा अनन्त गुना शक्ति शाली है, कितना अद्भुत होगा इसकी तो कल्पना कर सकना भी कठिन है।

योगियों में अनेकों प्रकार की अद्भुत शक्तियां होने के वर्णन और प्रमाण हमें मिलते हैं। योग की ऋद्धि सिद्धियों की अनेकों गाथाएं सुनी जाती हैं। उनसे आश्चर्य होता है और विश्वास नहीं होता कि यह सब कहां तक ठीक है। पर जो लोग विज्ञान से परिचित हैं और जड़ परमाणु तथा चैतन्य स्फुलिंग की शक्तियों से थोड़े बहुत परिचित हैं उनके लिए इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। जिस प्रकार आज परमाणु की शोध में प्रत्येक देश के वैज्ञानिक व्यस्त हैं उसी प्रकार पूर्वकाल में आध्यात्मिक विज्ञान वेत्ताओं ने—तत्वदर्शी ऋषियों ने—मानव शरीर के अन्तर्गत एक बीज परमाणु की अत्यधिक शोध की थी। दो परमाणुओं को तोड़ने, मिलाने, या स्थानान्तरित करने का सर्वोत्तम स्थान कुण्डलिनी केन्द्र में होता है। क्योंकि अन्य सब जगह ही चेतन्य परमाणु गोल और चिकने होते हैं पर कुण्डलिनी में यह मिथुन लिपटा हुआ है। जैसे यूरेनियम और प्लेटोनियम धातु में परमाणुओं का गुन्थन कुछ ऐसे टेडे तिरछे ढंग से होता है कि उनका तोड़ा जाना अन्य पदार्थों के परमाणुओं की अपेक्षा अधिक सरल है उसी प्रकार कुण्डलनी स्थिति स्फुलिंग परमाणुओं की गतिविधि को इच्छानुकूल संचालित करना अधिक सुगम है। इसीलिए प्राचीन काल में कुण्डलिनी जागरण की उतनी ही तत्परता से शोधें हुई थीं जितनी कि आजकल परमाणु विज्ञान के बारे में होरही हैं। इन शोधों परीक्षणों और प्रयोगों के फल स्वरूप उन्हें ऐसे कितने ही रहस्य भी करतलगत हुए थे जिन्हें आज "योग के चमत्कार,, नाम से पुकारते हैं।

मैडम ब्लैवेटस्की ने कुण्डनिनी शक्ति के बारे में काफी खोजबीन की है। वे लिखती है—"कुण्डलिनी विश्वव्यापी सूक्ष्म विद्युत शक्ति है, जो स्थूल बिजली की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति शाली है, इसकी चाल सर्प की चाल की तरह टेढ़ी है इससे इसे सर्पाकार कहते हैं प्रकाश एक लाख पचासी हजार मील फी सैकिंड चलता है पर कुण्डलिनी की गति एक सेकिण्ड में ३००४५ मील है।,, पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे "स्प्रिट फायर,, (*Spirit fire*) अथवा सरपेन्टलपावर (*Serpental Power*) कहते हैं। इस संबंध में

सर जान वुडरफ ने बहुत विस्तृत विवेचन किया है ।

कुण्डलिनी को गुप्त शक्तियों की तिजोरी कहा जासकता है। बहुमूल्य रत्नों को रखने के लिए किसी अज्ञात् स्थान में,सुरक्षित परिस्थितियों में तिजोरी रखी जाती है और उसमें कई ताले लगा दिये जाते हैं ताकि घर या बाहर के अनधिकारी लोग उस खजाने में रखी हुई सम्पत्ति को न ले सकें। परमात्मा ने हमें अनन्त शक्तियों का अक्षय भण्डार देकर उसमें छै ताले लगा दिये हैं। ताले इसलिए लगा दिये हैं कि जब पात्रता आजाय, धन के उत्तरदायित्व को ठीक प्रकार समझने लगें तभी वह सब प्राप्त होसके। उन छहों तालों की ताली मनुष्य को ही सौंपदी गई है ताकि वह आवश्यकता के समय तालों को खोलकर उचित लाभ उठा सके।

यह छै ताले जो कुण्डलिनी पर लगे हुए हैं, छै चक्र कहलाते हैं। इन चक्रों का बेधन करके

जीव कुण्डलिनी के समीप पहुंच सकता है और उसका यथोचित उपयोग करके जीवन लाभ प्राप्त कर सकता है। सब लोगों की कुण्डलिनी साधारणतः प्रसुप्त अवस्था में पड़ी रहती है। पर जब उसे जगाया जाता है तो वह अपने स्थान पर से हट जाती है और उस लोक में प्रवेश कर जाने देती है जिसमें परमात्म शक्तियों की प्राप्ति हो जाती है। बड़े बड़े गुप्त खजाने जो प्राचीन काल से भूमि में

छिपे पड़े होते हैं उन पर सर्प की चौकीदारी पाई जाती है। खजाने के मुख पर कुण्डलीदार सर्प बैठा रहता और चौकीदारी किया करता है। देवलोक भी ऐसा ही खजाना है जिसके मुख पर षट्कोण कूर्म की शिला रखी हुई है और शिला से लिपटी हुई भयंकर सर्पिणी कुण्डलिनी बैठी है। यह सर्पिणी अधिकारी पात्र की प्रतीक्षा में बैठी होती है। जैसे ही कोई अधिकारी उसके समीप पहुंचता है वह उसे रोकने या हानि पहुंचाने की अपेक्षा अपने स्थान से हटकर उसको रास्ता दे देती है और उसका कार्य समाप्त होजाता है।

मस्तिष्क के ब्रह्म रंध्र में बिखरे हुए सहस्र दल भी साधारणतः उसी प्रकार प्रसुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं जैसे कि कुण्डलिनी सोया करती है। इतने बहुमूल्य यंत्रों और कोषों के होते हुए भी मनुष्य साधारणतः बड़ा दीन, दुर्बल, तुच्छ, क्षुद्र, विषय विकारों का गुलाम बनकर कीट पतंगों जैसा जीवन व्यतीत करता रहता है और दुख दारिद्र की दासता में बँधा हुआ फड़फड़ाता रहता है। पर जब वह इन यंत्रों और रत्नागारों से परिचित होकर उनके उपयोग जान को लेता है, उन पर अधिकार कर लेता है तो वह परमात्मा के सच्चे उत्तराधिकारी की समस्त योग्यताओं और शक्तियों से सम्पन्न होजाता है। कुण्डलिनी जागरण से होने वाले लाभों के संबंध में योग शास्त्रों में बड़ा, विशेष और आकर्षक वर्णन है उस सब की चर्चा न करके यहां इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से इस विश्व में जो कुछ है वह सब कुछ मिल सकता है, उसके लिए कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रहती।

आदिम प्रवृतियों का परिष्कार।

(प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०)

मनुष्य एक उन्नत, अधिक विकसित एवं परिष्कृत पशु है। अपने संघर्ष एवं संयम के बल पर वह निरन्तर ऊँचा उठा है और अब भी उठता आ रहा है। इस उन्नति का मूल कारण निम्न प्रकार की दुष्प्रवृत्तियों को दबा कर या तो उन्हें बिलकुल ही विनष्ट कर देना है, अथवा उनके प्रकट होने का नवीन उत्पादक मार्ग प्रदान कर देना है।

मनुष्य और पशु में सामान्यतः चार आदिम प्रवृत्तियां बहुत बलवान् हैं। सर्वप्रथम काम है। काम का मूल अभिप्राय आत्म-प्रभुत्व, अहं का विस्तार, और अपने आपको दूसरे में उडेल कर अमर रखने की भावना है। काम की प्रवृत्ति अत्यन्त शक्ति शाली है किन्तु यदि ठीक देख भाल न की जाय तो यह मनुष्य को उन्मत्त कर देती है। उसे भले बुरे, उचित अनुचित का विवेक नहीं रहता। इच्छा शक्ति क्षीण हो जाती है यदि यह प्रवृत्ति वासना के रूप में प्रकट होने लगे तो मनुष्य व्यभिचार की ओर अग्रसर हो जाता है, अर्थ, धर्म, समाज का आदर, इज्जत सब कुछ खो बैठता है, कहीं का नहीं रहता अनेक मानसिक तथा शारीरिक रोगों का शिकार होकर वह मृत्यु को प्राप्त होता है। मृत्यु का कारण काम वासना की मौजूदगी नहीं है, नाश का कारण तो उसका दुरुपयोग है। अच्छी चीज का भी ठीक तरह उपयोग न किया जाय, तो वह विष बन जाती है। इसी प्रकार काम का अनुचित उपयोग दीन धर्म, इज्जत-आब स्वास्थ्य सब को नष्ट करने वाला है।

दूसरी है युद्ध प्रवृत्ति। मनुष्य तथा पशु किस

से दबना नहीं चाहते, वरन् वे उन्नति के लिए संघर्ष, युद्ध करना चाहते हैं। वे उत्तरोत्तर प्रभुत्व प्राप्त करना चाहते हैं। दूसरों के सामने नीचा नहीं झुकना चाहते। "महानत्व" की प्रवृत्ति में रहना चाहते हैं। अपने को आपको दूसरे से ऊंचा, विकसित, श्रेष्ठ, मजबूत, श्रेष्ठतर सिद्ध करना हम सबका स्वभाव है। प्रत्येक पशु में यह प्रवृत्ति प्रस्तुत है। मनुष्य अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए अनेक प्रकार के प्रपंच करता है, षडयंत्रों में सम्मिलित होता है और अन्त में लड़ मरता है।

तृतीय प्रवृत्ति भूख या क्षुधा है। क्षुधा निवारण के लिये हम हर प्रकार का कार्य करने को तैयार हो जाते हैं। रुपया पैसा कमाते हैं, व्यापार करते हैं, नौकरी के चक्र में फँसते हैं। किसी कवि की उक्ति है—"अरे यह पेट पापी जो न होता, तो लम्बी तान कर मैं खूब सोता।" मानव तथा पशु में भूख की निवृत्ति के लिए युग युग में नाना प्रकार के कार्य किये गये।

चौथी प्रवृत्ति है भय। पशु तथा मनुष्य भयभीत होकर शीघ्र ही आत्म रक्षा के उपाय करता है। आत्म रक्षा के लिए उसने नाना प्रकार के हथियार, औजार, हिंसात्मक चीजों की सृष्टि की है। जितने व्यक्ति व्याधि से मृत्यु को प्राप्त होते हैं, उनसे कहीं अधिक केवल भय की प्रवृत्ति, डर की कल्पना, रोगों की भावना से मरते हैं। भय का विश्वास मन में आते ही मनुष्य थर थर कांपने लगता है, मृत्यु की बातें उसके मन में डेरा जमाने लगती हैं। मृत्यु के कारणों की यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जांच पड़ताल की जाय तो विदित होगा कि अधिकांश व्यक्ति डर के भ्रम से काल के ग्रास बनते हैं।

इन चारों प्रवृत्तियों से लड़ते लड़ते मनुष्य को हजारों वर्ष व्यतीत हो गये हैं। इन वर्षों को हम सभ्यता का इतिहास कहते हैं। इन वर्षों में मनुष्य को पशु श्रेणी से उन्नत होने में बड़ी साधना और संयम से काम लेना पड़ा है। अनेक अवसरों पर इसे प्रलोभन से बचकर भविष्य के लिए अपनी शक्तियां संग्रहीत करनी पड़ी हैं। तुरन्त के थोड़े से लाभ को टालकर भविष्य के बड़े लाभ की चिंता करनी पड़ी है। यदि मनुष्य निरन्तर इन प्रलोभनों, आकर्षक विषयों, काम वासनाओं के हेतुओं को उच्च दिशा में विकसित न करता, तो कदापि वह सर्वश्रेष्ठ पशु न बन पाता।

मनुष्य ने काम, युद्ध, क्षुधा, और भय—इन चारों मूल प्रवृत्तियों के खिलाफ युद्ध किया, और दीर्घकाल तक किया। इस लम्बे युद्ध के पश्चात् उसे नई प्रवृत्तियां मिलीं, शील, गुण विकसित हुए, वह अनेक सिद्धियों से सम्पन्न परमेश्वर का श्रेष्ठतम पुत्र—राजकुमार बना। आदर्शवाद की नकारात्मक शब्दावलि में इन चारों प्रवृत्तियों को उसने निष्काम, निःशस्त्र, निरन्न, नैरात्मा के नए नाम दिये। इनके विकास को गुण माना गया। मनुष्य के चरित्र में इनका प्रमुत्व विशेष आदर का पात्र हुआ। जिस अनुपात में इनकी उन्नति हुई, उसी अनुपात में मानव संस्कृति की उन्नति हुई।

महात्मा गांधी जी ने इन चारों प्रवृत्तियों को राजनीति में प्रविष्ठ कराया। काम से उन्होंने "अनासक्ति", युद्ध प्रवृत्ति से "अहिंसा", क्षुधा से "उपवास", भय से "असहयोग" को जन्म दिया। अनासक्ति, अहिंसा, उपवास, असहयोग उन्होंने मानव जीवन के दूरस्थ लाभ के लिए आवश्यक तत्व समझे। इन चारों तत्वों की साधना से मनुष्य पशुत्व से ऊँचा उठ कर देवत्व की श्रेणी में जा बैठता है। इन्हीं के अभ्यास से उसका व्यक्तित्व स्थूल से सूक्ष्म, भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर बढ़ता है।

कामवृत्ति का परिष्कार करने के लिए ललित कलाओं का अभ्यास करना चाहिए। संगीत, कविता, चित्रकला, स्थापत्य, मूर्ति कला, नृत्य इत्यादि ऊँचे स्वरूपों से काम प्रवृत्तियां परिष्कृत होकर निकलती हैं। उसे भजन, पूजन, ईश्वराधना, धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए। भक्त तथा

संतकवियों की वाग्धारा में ऐसा मधुर साहित्य भरा पड़ा है, जिसमें अवगाहन करने से अमित शान्ति प्राप्त होती है।

युद्ध प्रवृत्ति के परिष्कार के लिए मनुष्य को अपनी गन्दी बातों से संघर्ष करना सीखना चाहिये। अपनी कठिनाइयों, दुर्बलताओं, परिस्थितियों से युद्ध करने के पर हम बहुत ऊँचे उठ सकते हैं। युद्ध करने लिए हमारे पास अनेक शत्रु हैं। यदि हम श्रेष्ठता का भाव दूसरों में जाग्रत करना चाहते हैं, तो हमें अपने शील, गुण, ज्ञान, अध्ययन, द्वारा करना चाहिए। अपने "अहं" का विस्तार करना चाहिए। उसमें पशु, पक्षी, दीन हीन व्यक्तियों को सम्मिलित करना चाहिए। हम जितना संभव हो दूसरों को प्यार करें उनके लिए यथा संभव प्रयत्न करें। उनका शुभ चाहें। दूसरों से हम जितना प्रेम करेंगे, जितना त्याग करेंगे,उतना ही इस प्रवृत्ति का परिष्कार होगा।

क्षुधा कई प्रकार की होती है—भोजन, काम, प्रसिद्धि, यश, कीर्ति इत्यादि इन सभी की प्राप्ति के लिए मनुष्य विविध उद्योग करते हैं। पेट की भूख मिटाने के लिए समस्त जगत् कुछ न कुछ करता है। प्रसिद्धि की भूख के लिए वह नीति अनीति तक का विवेक नहीं करता, कामवासना की शान्ति के लिए वह उन्मत्त हो जाता है। क्षुधा पर संयम पाने के लिए हमें उपवास का अभ्यास करना चाहिए। उपवास आत्म-विकास, आत्मशुद्धि की एक आध्यात्मिक प्रतिक्रिया है। इसी प्रकार काम वासना के संयम के लिए ब्रह्मचर्य का अभ्यास आवश्यक है। उपवास के समय प्रार्थना, स्वाध्याय, भजन, ध्यान,इत्यादि करना चाहिए।

भय को दूर करने के लिये साहस, शौर्य, पुरुषार्थ, शक्ति का विकास करना चाहिए। निराशा और चिंता, उद्वेग और आन्तरिक संघर्ष इसी विकार के अगणित परमाणु हैं। भय की स्थिति के निवारण के लिए मनुष्य को आन्तरिक साहस का उद्रेक करना चाहिए। आत्मा सदैव निर्भय है। वह परमेश्वर का अक्षय अंश है। उसे न कोई मार सकता है, न डरा सकता है। उसी का ध्यान करने से साहस का संचार होता है। भय को मार भगाने के लिए आत्मश्रद्धा की आवश्यकता है, एक मात्र आत्मश्रद्धा की। अपनी आत्मा को प्रतिपादन करो अपने अन्दर उसका सच्चा स्वरूप अनुभव करो तो मन से अनात्म विपत्तियों का आवरण हट जायगा। निर्भयता की निम्न भावना पर मन को एकाग्र कीजिये।

"मैं किसी से नहीं डरता, भूलकर भी डर के जंजाल में नहीं फँसता। मैं स्वतन्त्र और मुक्त आत्मा हूं। मेरी आत्मा सदा सर्वदा निर्भय है। मैं भीतर बाहर सब जगह आत्मदेव को देखता हूं। घातक भय के भाव मेरे मन मंदिर में उदय हो ही नहीं सकते। मैं आत्मा पर पूर्ण विश्वास करता हूं, मुझे अपने आप में असीम श्रद्धा है। मैं निर्भय रहने का व्रत लेता हूं।"

उपरोक्त चारों विकारों से मुक्ति प्राप्त कीजिये। स्वच्छन्द जीवन ही वास्तविक जीवन है। आत्म संयम द्वारा ही वह प्राप्त हो सकता है।

दवादारू का फंदा।

(महात्मा गान्धी)

—+—

हम लोगों की कुछ ऐसी आदतें पड़ गई हैं कि जहां कहीं जरा भी दर्द हुआ कि तुरन्त वैद्य, डाक्टर या हकीम के घर दौड़े जाते हैं, और यदि ऐसा न भी करें तो उस समय अपना पड़ोसी या अन्य कोई जिस दवा के लेने की सलाह देता है उसे तुरन्त ले लेते हैं। हमें कुछ ऐसा विश्वास

सा हो गया है कि बिना दवा के रोग मिट ही नहीं सकता। परन्तु यह एक बड़ा भारी वहम है और इस वहम से जितने लोग दुखी हुए हैं और होते हैं उतने और कारणों से न हुए और न होंगे। मतलब यह कि यदि हम यह समझ लें कि दर्द किसे कहते हैं तो कुछ समाधान हो सकती है। दर्द का अर्थ है दुःख और रोग का भी अर्थ यही है, इस लिए दर्द के मिटाने का उपाय करना तो योग्य है, पर उसके लिए दवा का उपयोग करना व्यर्थ है। यही नहीं, किन्तु ऐसा करने से बहुत बार नुकसान उठाना पड़ता है। हमारे घर में कचरा पड़ा हुआ है और उसे बाहर फेंक देने के बजाय हम ढक दें तो उसका जैसा असर होगा ठीक वैसा ही असर रोग मिटाने के लिए ली गई दवा का होता है। इस कचरे को ढक देने का परिणाम यह होगा कि वह सड़ कर अधिक हानि पहुंचावेगा। सिवा इसके उस परके ढक्कन को सड़ जाने से कचरा और भी ज्यादा सड़ जायगा। तब हमें दुगुने कचरे के निकाल फेंकने की चिन्ता करनी पड़ेगी। ठीक ऐसी ही दशा दवा लेने वाले की होती है। कचरा ढक देने के बजाय यदि बाहर फेंक दिया जाय तो घर पहले के जैसा ही साफ-सुथरा हो जाय। प्रकृति शरीर में रोग, कष्ट आदि पैदा कर सूचित करती है कि शरीर में कचरा इकट्ठा हो गया है। प्रकृति ने स्वयं भी कचरे निकालने के शरीर में कई रास्ते बना रक्खे हैं और जब जब शरीर में कोई रोग या कष्ट हो तो समझना चाहिए कि अब प्रकृतिने शरीर में से कचरा निकलना शुरू किया है। कोई मनुष्य हमारे घर का कचरा साफ करने लगता है तो हम उसका बड़ा उपकार मानते हैं और जब तक वह कचरा साफ करता रहता है तब तक कुछ तकलीफ भी होती है तो चुपचाप सह लेते हैं। उसी भांति प्रकृति जब तक हमारे शरीर में से कचरा निकाल कर उसे साफ न कर दे तब तक यदि हम चुप रहें—प्रकृति के विरुद्ध कोई दवा वगैरह न करें—तो शरीर निरोग होकर दुःखों से छुटकारा पा जाय। मान लीजिए कि हमें सरदी हो गई। उस समय दवा लेने या सौंठ वगैरह के खाने की कोई आवश्यकता नहीं है। हमें जानना चाहिए कि हमारे शरीर में जो कचरा इकट्ठा हो गया है उसे बाहर निकाल फेंकने के लिए प्रकृति आई है, उस समय उसे रास्ता देना चाहिए। ऐसा करने से हम बहुत थोड़े समय में ही साफ—निरोग—हो सकेंगे। यदि उस समय प्रकृति को अपना काम न करने देकर उसका सामना करने के लिए खड़े हो जायँ तो उसके लिए दुगुना काम बढ़ जायगा। एक तो कचरा दूर करना और दूसरा हमारे साथ लड़ना। इसके विपरीत चाहे तो प्रकृति को उलटी सहायता दी जा सकती है। हमें चाहिए कि जिस कारण से कचरा इकट्ठा हुआ है उस कारण को ही दूर कर दें, जिससे कचरे का बढ़ना रुक जाय। इसके लिए उस समय खाना बन्द कर देना चाहिए, ऐसा करने से कचरा न बढ़ेगा। इसके सिवा खुली हवा में योग्य कसरत करते रहने से भी कचरा शरीर के द्वारा निकलता रहेगा। शरीर को निरोग रखने के इस सुनहरी नियम को प्रत्येक मनुष्य अपने आप ही प्रमाणित कर सकता है। परन्तु उस समय अपने मनकी स्थिरता रखना बहुत ही आवश्यक है। जिस मनुष्य की ईश्वर पर सच्ची श्रद्धा है वह तो हमेशा ऐसा करेगा ही। मनको स्थिर करने में ये विचार बहुत ही सहायक होंगे कि ऐसा कोई बीमा नहीं उतार सकता जो वैद्य या हकीमों की दवा लेने से रोग दूर हो ही जायगा, क्योंकि उनकी दवा लेने वाले भी बहुत से निरोग होते नहीं देखे जाते। और यदि ऐसा होता हो तो फिर इन प्रकरणों के लिखने की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती, और हम सब बड़े सुखसे जिन्दगी का उपभोग करते हुए दिखाई पड़ते।

अनुभव तो यह कहता है कि जहां एक बार हमारे घर में श्रीमती बोतलदेवी का प्रवेश हुआ कि फिर वे उस घर से बाहर निकलती ही नहीं।

असंख्य मनुष्य ऐसे देखे जाते हैं जो जिन्दगी भर किसी न किसी रोग से जकड़े रहते हैं; और एक के बाद एक दवा बढ़ाते ही जाते हैं। वे प्रति दिन वैद्य या हकीमों को बदला करते हैं और रोग मिटा देने वाले वैद्य की तलाश में निरंतर घूमा करते हैं, और अन्त में स्वयं ख्वार होकर तथा औरों को ख्वार कर, तड़फ तड़फ कर मर मिटते हैं। स्व० प्रसिद्ध जज स्टीवन हिन्दुस्तान में रह गये हैं। उन्होंने एक बार कहा था कि "जिन बनस्पतियों के सम्बन्ध में वैद्य लोगों को बहुत थोड़ा ज्ञान है उन्हीं बनस्पतियों को वे ऐसे शरीर में पहुंचाते हैं जिसे उन बनस्पतियों का उन वैद्यों से भी बहुत थोड़ा ज्ञान है।'वैद्य लोगों को जब इस बात का पूरा पूरा अनुभव हो जाता है तब वे भी इसी भांति कहने लगते हैं।' डाक्टर मैजेन्दी ने कहा है कि 'वैद्यक महा पाखण्ड है।' सर एस्टलीने लिखा है कि 'वैद्यक-शास्त्र केवल अटकल पर रचा गया गया है।' सर जांन फोनर बर्क ने कहा है कि 'अच्छे डाक्टरों के रहने पर भी बहुत से मनुष्यों को कुदरत ने ही निरोग किया है।' डाक्टर वेकर का कहना है कि 'लाल बुखार से जितने रोगी मरते हैं उससे अधिक रोगी उसकी दवा से मरते हैं।' डाक्टर फरोथ कहते हैं कि 'डाक्टरी की अपेक्षा अधिक अप्रामाणिक धंधा भाग्य से ही कोई देख पड़ेगा। डाक्टर टोमस वोटसन कहते हैं कि 'बहुत से ऐसे आवश्यक प्रश्न हैं जिनका उत्तर हमारा डाक्टरी धंधा नहीं दे सकता।' डाक्टर फ्रैंक का कहना है कि 'इन दवाखानों के द्वारा हजारों मनुष्यों की हत्या होती है।' डाक्टर मेसन गुड कहते हैं कि 'प्लेग, हैजा, महामारी आदि से जितने लोग मरते हैं उनसे अधिक मनुष्य इन दवाओं की बलि चढ़ते हैं।' यह बात हम जगह जगह देखते हैं कि जहां जहां वैद्यों की वृद्धि हुई है वहां वहां रोग कम होने के बदले अधिकाधिक ही बढ़े हैं। जिन पत्रों को और २ विषयोंके विज्ञापन नहीं मिलते उन्हें दवाओं के बड़े बड़े विज्ञापन सहज में मिल जाते हैं। इंडियन-ओपीनियन में जब विज्ञापन लिए जाते थे और उसके संचालक गण जब लोगों के पास विज्ञापन लेने को जाते तब दवा बेचने वाले उसमें दवाओं का विज्ञापन छापने के लिए बड़ा आग्रह करते और उसका चार्ज भी भरपूर देने का लालच दिखलाते। जिस दवा की कीमत एक पाई होती है उसका हम एक रुपया देते हैं। यदि ऐसी दवाओं के बनालेने की कोशिश करना चाहें तो उसके बनाने वाले इस बात का पता भी नहीं पड़ने देते कि वह दवा किस तरह बनाई जाती है। 'गुप्त दवाएँ' नाम की एक पुस्तक एक डाक्टरने इस अभिप्राय से प्रकाशित की है कि उसे पढ़ कर लोग भ्रम में न पड़ें। उसमें उन्होंने लिखा है सालसा-परीला, फूट-सॉल्ट, सिरप वगैरह जो पेटेन्ट दवाएँ हैं उनकी कीमत सवा दो रुपये से लेकर सवा पांच रुपये तक दी जाती है, परन्तु इन दवाओं की मूल कीमत एक पैसे से लेकर चार पैसे तक होती है। इसे फैला कर देखें तो जान पड़ेगा कि हम लोग कम से कम छत्तीस गुणी और अधिक से अधिक तीनसौ छत्तीस गुणी कीमत देते हैं। मतलब यह कि इस हालत में तीन हजार पांचसौ टके से पैंतीस हजार टके तक का नफा दिया जाता है।

इससे पाठक इतना तो विचार सकेंगे कि रोगी को न तो डाक्टरों या वैद्यों के यहां दौड़े जाने की आवश्यकता है और न एकदम दवा लेने की, परन्तु दुःख है कि प्रायः लोग इतना धीरज नहीं रखते। साधारण लोग यह नहीं मान सकते कि सब ही डाक्टर अप्रामाणिक—अविश्वासी—होते हैं और सब दवाएं खराब ही होती हैं। ऐसे लोगों के लिए इतना कहना आवश्यक जान पड़ता है कि "जहाँ तक बन पड़े धीरज रक्खो, डाक्टरों या वैद्यों को जहां तक हो कष्ट न दो। डाक्टर वगैरह को बुलाना ही आवश्यक जान पड़े तो किसी अच्छे समझदार अनुभवी को बुलाओ और उसीके कहे अनुसार चलो;

दूसरे डाक्टर या वैद्यों को तभी बुलाओ जब कि पहला डाक्टर तुम्हें अन्य के बुलाने की सलाह दे। तुम्हारा रोग तुम्हारे डाक्टर के हाथ में नहीं है, आयु अधिक होगी तो अवश्य आरोग्य लाभ करोगे और प्रयत्न करते रहने पर भी यदि तुम्हारी या तुम्हारे सगे-सम्बन्धी की मौत हो जाय तो समझना कि यह भी एक जिन्दगी का फेर-फार ही है।

इन निबन्धों के लिखने का यही कारण है कि पाठक इनमें कहे गये शरीर रचना, हवा, पानी, खूराक, कसरत, कपड़े, पानी और मिट्टी के उपचार, आकस्मिक घटनाएँ, बच्चों की सँभाल, गर्भ के समय स्त्री-पुरुषों का कर्तव्य और साधारण रोग आदि विषयों के सम्बन्ध में खूब विचार और मनन कर उन्हें उपयोग में लाने का यत्न करें।

धर्म शास्त्र का सार-गायत्री।

महामंत्रस्य चाप्यस्य स्थाने स्थाने पदे पदे।
गूढो रहस्य गर्भोनन्तो पदेश स मुच्चयः।

(अस्य महामंत्रस्य) इस महा मंत्र के (स्थाने स्थाने) स्थान स्थान पर (च) और (पदे पदे) पद पद पर (रहस्य गर्भः) जिनमें रहस्य छिपा हुआ है ऐसे (अनन्तोपदेश समुच्चयः) अनन्त उपदेशों का समूह (गूढ़ः) छिपा हुआ अन्तर्हित है।

यो दधाति नरश्चैतानुपदेशांस्तु मानसे।
जायते ह्युभवं तस्य लोकमानन्दसंकुलम्॥

(यो नरः) जो मनुष्य (एतान्) इन (उपदेशान्) उपदेशों को (मानसे दधाति) मनमें धारण करता है (तस्य) उसके (उभयंल्लोकं) दोनों लोक (आनन्द संकुलं) आनन्द से व्याप्त (जायते) होजाते हैं।

गायत्री महामंत्र एक अगाध समुद्र है जिसके गर्भ में छिपे हुए रत्नों का पता लगाना सहज कार्य है। इस महासागर में से सभी ने अपने २ प्रज्ञा, योग्यता और आकांक्षा के अनुरूप रत्न निकाले हैं पर उस अक्षय भण्डार का पार किसी को भी नहीं मिला है। गायत्री के एक एक अक्षर और एक एक पद में कितना गहरा ज्ञान सन्निहित है इसका पता लगाते हुए जो जितना ऊंचा विद्वान है उसे उतनी ही कठिनाई होती है।

अनेक ऋषि महर्षियों ने गायत्री मंत्र के प्रत्येक अक्षर पर विशेष व्याख्याएं की हैं और अपने अपने दृष्टि कोण के अनुसार गायत्री के पदों के अर्थ निकाले हैं। वे अर्थ इतने अधिक, इतने अधिक विस्तृत, और इतने मर्म पूर्ण हैं कि इन थोड़ी पंक्तियों में उन्हें खुलासा प्रकट नहीं किया जासकता, उन्हें तो स्वतंत्र पुस्तक रूप से पाठकों के सामने उपस्थित करेंगे। इन पंक्तियों में तो गायत्री मंत्र का सर्व सुलभ अर्थ संक्षिप्त रूप से लिखा जारहा है जिससे उसके सामान्य अर्थ को सुविधा पूर्वक समझा जासके। आइए गायत्री मंत्र के एक एक शब्द का अर्थ करें—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियोयोनः प्रचोदयात्।

ॐ—ब्रह्म
भूः—प्राण स्वरूप,
भुवः—दुःखनाशक
स्वः—सुखस्वरूप
तत्—उस
सवितुः—तेजस्वी, प्रकाशवान्
वरेण्यं—श्रेष्ठ
भर्गः—पाप नाशक
देवस्य—दिव्य का, देने वाले का।
धीमहि—धारण करें।
धियो—बुद्धि।
यः—जो

नः—हमारी

प्रचोदयात—प्रेरित करे।

अर्थात्—उस सुख, स्वरूप, दुखनाशक श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, प्राण स्वरूप, ब्रह्म को हम धारण करते हैं जो हमारी बुद्धि को (सन्मार्ग की ओर) प्रेरणा देता है।

इस अर्थ पर विचार करने से उसके अन्तर्गत तीन तथ्य प्रकट होते हैं (१) ईश्वर के दिव्य गुणों का चिन्तन (२) ईश्वर को अपने अन्दर धारण करना (३) सद्बुद्धि की प्रेरणा के लिए प्रार्थना। यह तीनों ही बातें असाधारण महत्व की है।

मनुष्य जिस दिशा में विचार करता है, जिन वस्तुओं का चिन्तन करता है जिन तत्वों पर ध्यान एकाग्र करता है वह सब धीरे धीरे उस चिन्तन करने वाले की मनोभूमि में स्थिति और वृद्धि को प्राप्त करता जाता है। विचार विज्ञान का विस्तृत विवरण तो कहीं अन्यत्र करेंगे पर उसके सारभूत सिद्धान्तों को हमें समझ लेना चाहिए कि जिन बातों पर हम चित्त को एकाग्र करेंगे उसी दिशा में हमारी मानसिक शक्तियां प्रवाहित होने लगेंगी और अपनी अद्भुत सामर्थ्यों के द्वारा सूक्ष्म लोकों में से ऐसे ऐसे साधन, हेतु और उपकरण पकड़ लाती हैं जिनके आधार पर उसे चिन्तन की दिशा में मनुष्य को नाना प्रकार की गुप्त प्रकट, दृश्य अदृश्य सहायतायें मिलती हैं और उस मार्ग में सफलताओं का तांता बँध जाता है चिन्तन का ऐसा ही महत्व और महात्म्य है। ध्यान योग की महिमा किसी से छिपी नहीं है।

गायत्री मंत्र के प्रथम भाग में ईश्वर में कुछ ऐसे गुणों का चिन्तन है जो मानव जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आनन्द, दुख का नाश, श्रेष्ठता, तेज, निर्मलता एवं आत्मा की सर्व व्यापकता, आत्मवत सर्वभूतेषु की मान्यता पर जितना ही ध्यान एकाग्र किया जायगा, मस्तिष्क इन तत्वों की अपने में वृद्धि करेगा। मन इनकी ओर आकर्षित होगा, अभ्यस्त बनेगा और उसी आधार पर काम करेगा। आत्मा की सच्चिदानन्द स्थिति का चिन्तन, दुख शोक रहित ब्राह्मी स्थिति का चिन्तन; श्रेष्ठता, तेजस्विता और निर्मलता का चिन्तन, आत्मा की सर्व व्यापकता का चिन्तन यदि गहरी अनुभूति और श्रद्धा पूर्वक किया जाय तो आत्मा एक स्वर्गीय दिव्य भाव से ओत प्रोत होजाता है आत्मा इस दिव्य आनन्द को विचार क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखता वरन् क्रिया में लाकर इसका सुदृढ़ आनन्द भोगने की ओर कदम उठाता है।

गायत्री मन्त्र के दूसरे भाग में उपरोक्त गुणों वाले पुञ्ज को, परमात्मा को अपने में धारण करने की प्रतिज्ञा है। इन दिव्य गुणों वाले परमात्मा का केवल चिन्तन मात्र किया जाय सो बात नहीं, वरन् गायत्री की आत्मा का सुदृढ़ आदेश है कि उस ब्रह्म को, उस दिव्य गुण सम्पन्न परमात्मा को, अपने अन्दर धारण करें उसे अपने रोम रोम में ओत प्रोत करलें, परमात्मा को अपने कण कण में व्याप्त देखें और ऐसा अनुभव करें कि उन दिव्य गुणों वाला परमात्मा हमारे भीतर बाहर आच्छादित होगया है और उन दिव्य गुणों में, उस ईश्वरीय सत्ता में अपना 'अहम्' पूर्णरूप से निमग्न होगया है। इस प्रकार की धारणा से जितने समय तक मनुष्य ओत प्रोत रहेगा उतने समय तक उसे भूलोक में रहते हुए भी ब्रह्म लोक के आनन्द का अनुभव होगा यह अनुभव इतना गंभीर है कि आगामी जीवन में, बाह्य आचरणों में उसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। उसमें सात्विक तत्वों की मंगलमय अभिवृद्धि न हो ऐसा हो नहीं सकता।

गायत्री मन्त्र के तीसरे भाग में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह हमारे लिए सद्बुद्धि की प्रेरणा करे। हमें सात्विक बुद्धि प्रदान करें हमारे मस्तिष्क को कुविचारों, कुसंस्कारों, नीच वासनाओं, दुर्भावनाओं से छुड़ा कर सतोगुणी ऋतम्भरा बुद्धि से, विवेक से, सद्ज्ञान से पूर्ण करें

इस प्रार्थना के अन्तर्गत बताया गया है कि प्रथम भाग में बताये हुए दिव्य गुणों को प्राप्त करने के लिए, दूसरे भाग में बतायी गई ब्रह्म धारणा के लिए इस तीसरे भाग में उपाय बतादिया गया है कि अपनी बुद्धि को सात्विक बनाओ, आदर्शों को ऊँचा उठाओ, उच्च दार्शनिक विचार धाराओं में रमण करो और अपनी तुच्छ तृष्णा एवं वासनाओं के इशारे पर नाचते रहने वाली कुबुद्धि को मानस लोक में से बहिष्कृत कर दो। जैसे जैसे बुद्धि का कल्मष दूर होगा वैसे ही वैसे दिव्य गुण सम्पन्न परमात्मा के अंशों की अपने में वृद्धि होती जायगी और उसी अनुपात से लौकिक और पारलौकिक आनन्दों की अभिवृद्धि होती जायगी।

गायत्री मंत्र के गर्भ में सन्निहित उपरोक्त तथ्य में ज्ञान कर्म, उपासना तीनों हैं। सद्गुणों का चिन्तन ज्ञान है, ब्रह्म की धारणा कर्म है और बुद्धि की सात्विकता अभीष्ट प्राप्त की क्रिया प्रणाली एवं उपासना है। वेदों की समस्त ऋचायें इसी तथ्य को सविस्तार प्रकट करने के लिए प्रकट हुई हैं। वेदों में, ज्ञान कर्म और उपासना यह तीन विषय हैं, गायत्री ने बीज में भी उन्हीं तीनों का व्यवहारिक संक्षिप्त, एवं सर्वाङ्ग पूर्ण है। इस तथ्य को इस बीज को सच्चे हृदय से, निष्ठा और श्रद्धा के साथ अन्तःकरण में गहरा उतारने का प्रयत्न करना ही गायत्री की उपासना है। इस उपासना से साधक का सब प्रकार कल्याण ही कल्याण है।

तुम पापी नहीं पुण्यात्मा हो।

(स्वा० विवेकानन्द)

हम पापी हैं, पापी हैं, ऐसा कहने मात्र से कोई पुन्यात्मा नहीं बन जाता। पुन्यात्मा होने के लिए तो अन्तःकरण को शुद्ध बनाने की आवश्यकता होती है, आत्मा को अनुभव करने की आवश्यकता होती है। अपने को पहिचान ने की आवश्यकता होती है। मनुष्य जाति की उन्नति का यही साधन है। यदि ईश्वर ने हमें पुण्यात्मा बनाया है तो हमें अपने को पापी क्यों समझना और कहना चाहिए। ये विचार तो क्षुद्र हैं, संकुचित हैं। हृदय पवित्र बनाइए, आप पवित्र ही हैं। विचार का बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि अपने आपको पापी समझते रहोगे तो पापी ही बने रहोगे पर यदि पुण्यात्मा समझना आरम्भ करोगे तो पुण्यात्मा हो जाओगे। एक शेर का बच्चा अपने जन्म काल से बकरियों के समूह में रहते रहते अपने को बकरी समझने लगा, घास खाने लगा और बें-बें-बोलने लगा। एक बार एक शेर ने उसे देख लिया, उसे शेर के इस व्यवहार से दुःख हुआ, वह उसके पास आया और बोला, तू शेर होकर बकरियों सा व्यवहार क्यों करता है, इस पर उस शेर ने अपने को शेर होने से भी इन्कार कर दिया। तब वह शेर उस बकरी बने शेरको पानी के पास लेगया और उसे उसकी परछांई पानी में दिखाकर स्वरूप ज्ञान कराया तब कहीं उसने अपनी शेर वृत्ति का अवलम्बन किया। शेर के बच्चे की तरह भ्रममें पड़े हुए मनुष्यो! उठो, अपने को क्यों पापी समझते हो, अपने शुद्ध चैतन्य निष्पाप ब्रह्म स्वरूप को समझो। अँधेरे में खड़े होकर अँधेरा अँधेरा कहने से कभी अँधेरे का नाश नहीं होगा धीरे से दियासलाई जला दो, सब अँधेरा भाग जावेगा।

अज्ञान से ज्ञान की ओर बढ़िए।

(योगीराज श्री अरविन्द)

—:—

कई बार ऐसा देखा गया है कि कठिन से कठिन दुःख अनायास ही आनन्द में बदल गया है। इसका कारण यह है कि दुःख भी आनन्द ही है। क्यों कि दुःख की सीमा लांघ जाने के बाद उसके भीतर का आनन्द ही मिलकर बाहर प्रकट होता है शोक और दुःख में आनन्द है। भगवान भीतर रह कर प्रत्येक प्रकार के आनन्द का उपभोग करते हैं क्यों कि भगवान भोग मय हैं। भगवान को जिसमें आनन्द आता है या जिसका उपभोग करना चाहते हैं, वे उसी की सृष्टि कर लेते हैं, और उसका सृजन अनिवार्य है। दुःख सुख आदि द्वन्द्व तो हम लोगों को देखने में आते हैं, परन्तु वास्तव में ये सब हैं आनन्द के ही प्रकारान्तर।

भगवान के लिए किसी बाहरी रूप की उतनी कीमत नहीं है जितनी कि उसके भीतरी रूप की। इसलिए वे पहले वस्तु के असली स्वरूप अर्थात् भीतरी रूप और कारण को देखते हैं। इसके बाद कल्पनाओं और संभावनाओं के रंग की लीला देखते और अन्त में स्थूल कार्य को अर्थात् पहले अध्यात्म सत्य, फिर होने योग्य एवं संभावित अध्यात्म सत्य और अन्त में स्थूल साकार शारीरिक सत्य को देखते हैं।

(यहां श्री अरविन्द का कहना है कि प्रत्येक आकार वान कार्य या स्थूल के तीन रूप हैं। परन्तु मुख्य रूप है कारण अर्थात् भावना। कार्य की दिशा और उसका फलाफल कार्य के देखने से पता नहीं चलता बल्कि उस कार्य के मूल में जो भावना काम कर रही है उससे उसकी दिशा एवं फलाफल का पता लगता है। पहले कार्य भावना रूप से आरम्भ होता है, फिर भावना आकार धारण करने की अर्थात् क्रिया अवस्था में आती है फिर आकरवान बन जाती है। इस बात को समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए। एक गाय है, और उस गाय को मार के ख्याल से एक कसाई उसके पीछे दौड़ र[illegible] है। गलियों में से दौड़ती दौड़ती वह गाय ए[illegible] चौराहे पर आकर एक भिन्न दिशा में चली जा[illegible] है, कसाई चौराहे पर आकर गाय के जाने [illegible] दिशा जानना चाहता है। एक प्रत्यक्ष दर्शी व[illegible] खड़ा मिलता है, वह गाय का उससे पता पूछ[illegible] है। आकार प्रकार से वह प्रत्यक्षदर्शी उस कस[illegible] के सम्बन्ध में तथा उसकी भावना को सम[illegible] लेता है और गाय जिस रास्ते से गई है उस[illegible] विपरीत की दिशा उसे बतला देता है इस प्रक[illegible] गाय के प्राण बच जाते हैं। देखने में प्रत्यक्षद[illegible] की यह कार्य गलत और सत्य विरोधी मा[illegible] होता है लेकिन सत्य का जो परम लक्ष्य है [illegible] उसकी सिद्धि इस दिखने वाली मिथ्या से हो[illegible] है। प्रत्यक्षदर्शी का गलत दिशा बतलाने में ग[illegible] की रक्षा ही प्रयोजन था। कार्य का प्रत्[illegible] स्वरूप एवं फल भिन्न होने पर भी भावना [illegible] की कार्य की दिशा रही वही वास्तव में विशु[illegible] कर्म एवं कर्त्तव्य रहा है। इसीलिए कार्य [illegible] देखकर नहीं बल्कि उसके मूल कारण-भाव[illegible] को देखकर ही उसकी दिशा और वास्तवि[illegible] का पता लगता है, और वही उसका वास्तवि[illegible] रूप होता है। भगवान इसी रूप को देखते [illegible] इसीके साथ भोग करते हैं)

लेकिन हम लोग पहले स्थूल पदार्थ देखते हैं फिर सूक्ष्म संभावना और अन्त अध्यात्म कारण पर दृष्टि दौड़ाते हैं। यही का[illegible] है कि पूर्ण सत्य के दर्शन में मनुष्य को अ[illegible] विघ्नों का सामना करना पड़ता है। भागवत [illegible] या दिव्य दृष्टि प्राप्त कर लेने पर हम यथार्थ [illegible] को देख सकते हैं उस यथार्थ सत्य में सब संभ[illegible]

नाओं, कल्पनाओं तथा यथार्थ सत्य का प्रकाश भी सम्मिलित है। ईश्वरेच्छा से ही कार्य की सृष्टि होती है। ईश्वरेच्छारूपी कारण में दृष्टि और सृष्टि, पूर्ण और धारावाहिक (अविच्छिन्न) लीला प्रतीत होती है। इसी दृष्टि के प्राप्त हो जाने पर दुःख सुख अभेद होजाते हैं और ये सबके सब द्वन्द्व मूलरूप में एक और भगवान की लीला मात्र अनुभूत होते हैं।

वास्तव में द्वन्द्व तो अज्ञान के कारण अनुभूत होता है। अपने मूलरूप को भूल जाना यही तो अज्ञान है। हम जिस अवस्था में हैं वही *Mind of ignorance* मानसिक अज्ञान है। यह अज्ञान मानव के मन और प्राणरूपी क्षेत्र में स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण करता है। मन भुलक्कड़ स्वभाव का होने के कारण उसमें सत्य एवं ज्ञान इस प्रकार छिपे हुए हैं कि प्रकाश के सहारे ढूँढ़ने पर उसकी प्राप्ति होसकती है। मामूली वस्तुएँ बाहरी आघात से या भीतरी प्रकाश से स्मरण में व्यक्त हो जाती है जो कि स्मरण रखने पर ज्ञात हो जाती है। प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो का सिद्धान्त था कि ज्ञान कोई दूसरी वस्तु नहीं, भूली हुई वस्तु का स्मरण होजाना ही ज्ञान है। साधकों को सबसे पहले इसी मन के साथ परिचय करना पड़ता है। ज्ञान का मन इसके ऊपरी तह में है जहां पर कि ज्ञान का निवास तथा प्रज्वलित सत्य का राज्य है।

मानव भाव प्रधान प्राणी है। भाव भक्ति का द्योतक है! भक्ति रहने से भगवान का कार्य करने की शक्ति का अभाव नहीं रह जाता, परन्तु एक मात्र इसके द्वारा ज्ञान का विकास नहीं हो सकता, ज्ञान से ही भगवान को अनन्त भाव से समझा जाता है। भगवान की अनन्त विचित्र लीलाओं का ऐक्य न करने से वृहद् सृष्टि का होना असंभव है तब तो उसका जीवन क्षुद्र सृष्टि में ही परिसमाप्त होता है। क्षुद्रता भगवदिच्छा का विरोधी तत्त्व है क्यों कि कोई भी आघात ऐक्य को अनैक्य में बदल सकता तथा मानव को भगवद्विमुख बना सकता है इसीलिए साधक को वृहद् होकर भाव को पूर्ण रीति से धारण करना चाहिए। वृहद् सृष्टि की जड़ समता है जो कि ज्ञान के बिना प्राप्त नहीं हो सकती और न पूर्ण ज्ञान आये बिना कोई चीज स्थायीरूप ही धारण कर सकती है—

जिस साधक में पूर्ण ज्ञान नहीं होता उसके पतन की बहुत बड़ी आशंका रहती है। जिस समय बुद्धि में शान्ति, गंभीरता और विशालता का आना आरंभ हो जाता है उसी समय ज्ञान का उदय होना प्रारंभ होजाता है। भक्ति चाहे जितनी प्रबल हो जाए, किन्तु ज्ञान का उदय हुए बिना उसमें भाव च्युति अवश्य ही आवेगी।

साधक को हमेशा ही ध्यान रखना है कि कर्म ही जीवन का एक मात्र उद्देश्य नहीं है। ज्ञान का उदय ही सृष्टि को मूलतः समझना है। जिस समय ज्ञान भक्ति और शक्ति के सम्मिश्रण का रूप धारण करेगा उसी समय सृष्टि सार्थक होगी। इसके लिए संभव है कि अनेकों बार उत्थान और पतन में होकर गुजरना पड़े, मार्ग में बीच में ही विषाद उत्पन्न हो जाय और जीवन के चूर्ण विचूर्ण होने की नौबत आजावे, लेकिन सतत जागरूक रहने और तीक्ष्ण दृष्टि रखने पर इससे बचा भी जासकता है। निराश और संशयित होने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। भगवान के समीप आत्मसमर्पण करके काम करते जाओ, सम्पूर्ण विघ्नों से बचकर ज्ञानावतरण सुसिद्ध होगा इसमें कोई संशय नहीं है।

— —

"कंजूस अन्धा होता है क्योंकि वह सिवा सोने के और किसी सम्पत्ति को नहीं देखता, अपव्ययी अन्धा होता है क्योंकि वह प्रारम्भ को ही देखता है, अन्त को नहीं। रिझाने वाली स्त्री अन्धी होती है क्योंकि वह अपनी झुर्रियां नहीं देखती, विद्वान अन्धा होता है क्योंकि वह अपना अज्ञान नहीं देखता, ईमानदार अन्धा होता है क्योंकि वह चोर को नहीं देखता, चोर अन्धा होता है क्योंकि वह परमात्मा को नहीं देखता।" + +

पापात्मा का जप तप निष्फल है।

(पं० तुलसीराम शर्मा, वृन्दावन)
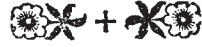
श्रीरामचरित मानस में लिखा गया है—

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक कर पंथ।
सब परि हरि रघुवीरपद भजहु कहहिंसद्ग्रंथ॥
—सुन्दर काण्ड

काम (विषयाभिलाष) क्रोध, मद (अभिमान) लोभ इत्यादि सब नरक के रस्ता हैं इनको त्याग कर श्रीराम के चरणों में प्रेम करना चाहिये ऐसा सब ही श्रेष्ठ ग्रन्थ कहते हैं।

दंभ मानमद करहिं न काऊ।
भूलि न देहि कुमार गयाऊ॥
—आरण्य० ॥

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि साधु पुरुष दंभ मान, मद को पास नहीं आने देते और भूलकर भी खोटे रास्ते पर नहीं चलते।

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह की धार।
तिन महं अति दारुण दुखद मायारूपी नारि॥
(आरण्य)

काम आदि मद दंभनजाके।
तात निरन्तर बस मैं ताके॥
—(आरण्य)

श्री रामचन्द्रजी कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! जिसके शरीर में काम क्रोध लोभ मद मात्सर्य ये विकार नहीं हैं मैं उसके वश में रहता हूं।

इन कामादि पापों को अधिक अनर्थकारी जानकर महात्मा तुलसीदासजी श्रीरामचन्द्रजी से प्रार्थना करते हैं—

भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे।
कामादि दोष रहितं कुरुमानसं च॥
(सुन्दर० मंगलाचरण)

अपने चरण कमलों की भक्ति दो और मेरे मनको काम-क्रोध-लोभ-मोह मद मात्सर्य इन दोषों से रहित कर दो।

काम क्रोध विहीना ये हिंसा दंभ विवर्जिताः।
लोभ मोह विहीनाश्च ज्ञेयास्ते वैष्णवाजनाः॥
(पद्मपु० ७।२।८३)

हिंसादंभ काम क्रोधै र्वर्जिताश्चैवयेनराः।
लोभ मोह परित्यक्ता ज्ञेयास्ते वैष्णवाद्विजाः॥
(पद्म पु० ४।१।२१)

इन दोनों वचनों का मर्मानुवाद यही है कि काम-क्रोध-लोभ-मोहादि ये जिसमें नहीं हैं वह विष्णुभगवान् का भक्त है।

काम क्रोधादि सं सर्गादशुद्धं जायनेमनः।
अशुद्धेमनसि ब्रह्मज्ञानंतच्च विनश्यति॥

काम क्रोधादि के संसर्ग से मन अशुद्ध हो जाता है फिर अशुद्ध मनमें ईश्वर ज्ञान नहीं होता।

काम क्रोधं रसास्वादं जित्वा मानं च मत्सरम्।
निर्दम्भविष्णु भक्ता ये तं संतं साधवोमताः॥
(स्कं० पु० २।६।२०।३०)

काम-क्रोध-रसास्वाद (जिह्वाकीलोलुपता) मान (अपने में पूज्यभाव) मत्सर (डाह) इन को त्याग कर जो भीतर से (नकि दिखावे के लिये) विष्णुभगवान के भक्त हैं वे संत कहे जाते हैं।

वेदास्त्यागश्चयज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिंगच्छन्ति कर्हिचित्॥
(मनु० २।९७)

वेदाध्ययन, दान (न्याय पूर्वक पैदा किया द्रव्य सुपात्र को देना) यज्ञ, नियम तप ये सब विषयासक्त पुरुष को फलदायक नहीं होते।

कामः क्रोधश्च लोभश्च मदोमोहश्च मत्सरः।
नर्जिताः षडिमे यस्त तस्य शांतिर्नसिद्धचति॥१०१
(सर्व वेदान्त सिद्धान्त सारसंग्रहः)

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, और मत्सर

ये छः विकार जिस पर नहीं जीते गये अर्थात् हृदय में रहे आये तो उस पुरुष को शांति प्राप्त नहीं होगी।

ईर्ष्या शोक भय क्रोध मान द्वेषादयश्चये।
मनो विकारास्तेऽप्युक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः॥
(चरकसूत्र स्थान अ० ७)

ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, मान, द्वेषादिये बुद्धि के दोष से उत्पन्न हुए मनके विकार हैं।

काम क्रोधौ परित्यज्य लोभ मोहौ तथैव च।
ईर्ष्या मत्सर लौल्यं च यात्रा कार्या ततो नृभिः॥
(स्कं० पु० ७।२८।७)

काम क्रोधौ परित्यज्य लोभमोहौ तथैव च।
इर्ष्या दंभस्तथालस्यं निद्रा मोहस्त्वहंकृतिः॥
एतानि विघ्न रूपाणि सिद्धिविघ्न कराणितु॥
(स्कं० पु० ७।१।५२।५)

काम, क्रोध, ईर्ष्या, दंभ, इत्यादिको त्याग कर तीर्थ यात्रा करनी चाहिये। और ये काम क्रोधादि सिद्धि में विघ्न करने वाले हैं।

पर द्रोहधियोयेच परेर्ष्या कारिणश्चये।
परोपतापिजो ये वै तेषां काशी न सिद्धये॥
(स्कंद पु० ४।२८।१०३)

जो दूसरे का अनिष्ट चिन्तन करता है, दूसरे की तरक्की को नहीं देख सका है, और दूसरे को पीड़ा देता है ऐसे पुरुषों को काशी वास सिद्धि दायक नहीं।

यदि कामादि दुष्टात्मा देवपूजा परोभवेत्।
दंभाचार स विज्ञेयः सर्वपातकिभिः समः॥
(नारद पु० ३३।३८)

काम क्रोधादि से जिसका मन मैला है और फिर ऐसा मनुष्य देव पूजा करे तो समझना चाहिये कि यह पुरुष बड़ा पापी है दूसरे को ठगने के लिये ढोंग बना रखा है।

कामः क्रोधस्तथालोभो मद मोहि चमत्सरः।
रिपवः षड्विजेतव्याः पुरुषेणविजानता॥
(विष्णु, धर्मोत्तर पु० ३।२३३।२५७)

बुद्धिमान् पुरुष को काम क्रोधादि ६ शत्रुओं को जीतना चाहिये।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशन मात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयंत्यजेत्॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारै स्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परांगतिम्॥
(भ० गी० १६।२१।२२)

अपनी आत्मा का नाश करने वाले काम क्रोध लोभ ये ३ नरक के दरवाजे हैं इसलिये इन को त्यागना चाहिये।

इनसे छूटा हुआ पुरुष अपना कल्याण कर परम गति को प्राप्त कर सका है।

काम क्रोध मद लोभ की जबलों मनमें खानि।
तबलों पंडित मूरखा तुलसी एक समान॥

उपरोक्त लेखका सारांश निम्न लिखित वचनों में स्पष्ट होता है—

न क्रोधो नच मात्सर्यं नलोभो नाशुभ मतिः।
भवन्ति कृतपुन्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे॥
(म० भा० अनु० १४६।१३३)

क्रोध, डाह, जलन, लोभ अशुभमति (ओच्छी समझ) इत्यादि बातें भगवान् के पुण्यात्मा भक्तों में नहीं होतीं।

इसलिये—

संत्यज्य काम क्रोधं च लोभ मोहं मदंतथा।
परापवाद निन्दांच भजध्वं भक्तितो हरिम्॥
(नारद पु० ३०।१०३)

काम (विषयभोगों में आसक्ति) क्रोध लोभ मोहादि को त्याग कर भगवान् का भजन करना चाहिये।

पूजयेद्यो नरोधीमान् शालिग्राम शिलां वराम्।
तेनाचार वताभाव्यं दंभलोभ वियोगिना॥ १८॥
परदार परद्रव्य विमुखेन नरेण च।
पूजनीय प्रयत्नेन शालिग्राम सचक्रकः॥ १९॥
(पद्म पु० पाताल खं० अ० २०)

इन वचनों का मर्मानुवाद यही है कि हिंसा चोरी, व्यभिचार आदि दुष्कर्मों से बचकर देव पूजन करना चाहिये।

योदेवाङ् मनसी सम्यग् संमच्छन् धियायतिः।
तस्य व्रतं तपोदानं स्रवत्याम घटाम्बुवत्।
तस्मान्मनो वचः प्राणान् नियच्छेन् मत्परायणः॥
(भा० ११।१६।४३)

जो सन्यासी वाणी को असत्यादि से और मनको असद्विचार से नहीं रोकता उसके व्रत, तप, दान सब नष्ट हो जाते हैं जैसे कच्चे घड़े से जल निकल जाता है इससे जो मेरे में लगा हुआ पुरुष है वह मन वचन और प्राण इनको रोके।

सारांश यही है कि मन, वाणी शरीर के पाप कर्म (हिंसा चोरी व्यभिचार आदि) से बचता हुआ नाम जपादि कर्त्तव्य हैं। अन्यथा निष्फल हैं मालतीवसन्त, चन्द्रोदय आदि बहुमूल्य औषधि तब ही फलदायक हैं जब उनके साथ कुपथ्य से परहेज है।

आत्म निर्माण की ओर—

(श्री विश्वामित्र वर्मा)

छोटी छोटी साधारण बातें बड़ी महत्त्वपूर्ण होती हैं—उनमें तत्त्वज्ञान और बड़े बड़े सत्य सिद्धान्त मिलते हैं। तुममें जितना ज्ञान है उसका उपयोग करते रहो जिससे वह नित्य नवीन बना चमकता रहेगा। केवल पुस्तकें पढ़ कर संसार की व्यावहारिक प्रथाओं में डूब जाने से ज्ञान होने से क्या लाभ जब कि अज्ञानियों के समान ही आचरण किया जाय। ज्ञानियों ने प्रथाओं की व्यवस्था मूर्खों के निर्देश के लिए की है, ज्ञानी तो स्वतंत्र हैं और ज्ञान द्वारा विवेकबुद्धि से आचरण करने में समर्थ हैं यद्यपि मूर्ख लोग प्रथाबद्ध होकर ज्ञानी को धिक्कारते हैं कि उल्टा आचरण करते हो? ज्ञानी जानता है कि तत्व सत्य क्या है अतः वह मुक्त है। अज्ञानी अज्ञान के कारण प्रथाओं और परम्परा को ही सत्य मान उनमें लिप्त बद्ध है। उसमें बुद्धि नहीं कि स्वतंत्र रूप से प्रथा और परम्परा से बाहर निकल कर कुछ सोच सके और कर सके। यदि तुम ज्ञानी होकर भी मूर्खों के बीच प्रथा और परम्परा के अनुसार आचरण करो तो तुममें और मूर्खों में क्या अन्तर रहा?

अपने ज्ञान को स्वाध्याय और छोटे छोटे व्यवहार द्वारा नित्य परिमार्जित करते रहो। यदि कहीं ज्ञान चर्चा होती हो और उसके कुछ शब्द सुनकर तुम्हें मालूम पड़े तो यह कहकर वहां से मत खिसक जाओ कि यह सब तो मैंने पढ़ लिया है मैं जानता हूं। संभव है उसके अन्दर कोई नवीन बात निकल आवे जो तुम्हारे लिए उपयोगी हो, तुम्हारे जीवन में महान् परिवर्तन उपस्थित करदे।

अपनी बात चीत में सदैव सतर्क रहो। किसी के विषय में आलोचना या निन्दा मत करो, और अपने विषय में किसी प्रकार की हीनता मत प्रकट करो। संसार में सभी प्राणी—परमात्म की कला द्वारा रचित उसकी प्रतिमूर्ति हैं दिव्य हैं, तुम भी उसकी प्रतिमूर्ति और दिव्य हो आवश्यकता है केवल आत्म विकास की, जिससे तुम दूसरों का और अपना सत्य स्वरूप समझ सको।

रात को सोते समय अन्वेषण करो कि दिन भर की बातचीत में तुमने किसी से कैसी कैसी बातें कीं। निश्चय करो कि अगले दिन बातचीत में कोई असत्य, हीन बात न निकले। तुम्हारे शब्द ठोस, रचनात्मक, दिव्य, प्रसन्न और चेतन हों जिससे दूसरों पर ऐसा प्रभाव पड़े जैसे एक चुम्बक दूसरे लोहे को खींचता है, और बिजली द्वारा मुर्दा बैटरी 'चार्ज' हो जाती है। ऐसा हो तुम्हारे शब्दों का प्रभाव कि सुनने वाला निराश

निरुत्साही व्यक्ति चेतन हो जाय और असत्य भाषी का दिल हिल जाय और दुबारा असत्य बोलने का साहस न रह जाय।

यदि तुम्हें इस प्रकार प्रयत्न करने में प्रथम दिन सफलता न मिले तो हताश होकर छोड़ मत दो, प्रयत्न करते रहो। बहाना मत करो कि इतनी बारीकी से व्यवहार हमसे नहीं होता, कहां तक किस किसके साथ हरेक शब्द का ख्याल रखें। एक एक व्यक्ति के सुधार से दुनियां धीरे धीरे सुधर जायगी, जल्दी नहीं होता। संसार का विकास क्रम सूक्ष्म गति से हो रहा है।

किसी रोज़ सन्ध्या समय विश्लेषण करने में जब मालूम हो जाय कि आज दिन भर हमने किसीकी निन्दा नहीं की, कोई हीन बात नहीं बोले, किसी का तिरस्कार नहीं किया, चुगली नहीं की, तो समझ लो कि उस दिन तुम्हारा आध्यात्मिक विकास का बीजारोपण होगया। शब्दों पर अधिकार रखकर अब तुम आगे उन्नति कर सकोगे।

यदि तुम किसी व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्ति की आलोचना, चुगली या तिरस्कार सुनो तो उस पर ध्यान मत दो, उसे मत मानो। वह निन्दक अपनी ही आत्महीनता का परिचय दे रहा है—उसमें स्वयं कितनी बुराइयां हैं उसे वह नहीं देखता और नहीं दूर करता। वह दूसरों के छिद्र देखता है—उसकी बात सुनकर उससे कहो, "मुझे आलोचना या चुगली मत सुनाओ। इससे तुम्हें या मुझे क्या लाभ? मुझे यह बताओ कि उस व्यक्ति में अच्छे गुण क्या हैं, और वे अच्छे गुण तुम में हैं या नहीं? तथा उसकी अपेक्षा तुम कितना अच्छा काम कर सकते हो-यह सिद्ध करो।" तुम्हारी ऐसी बातें सुनकर उसकी दुबारा चुगली करने की हिम्मत नहीं होगी।

तुम भी यदि कभी चुगली या वार्ता सुनो, दूसरों की चर्चा सुनो तो उसे दूसरों को मत सुनाओ—इससे व्यर्थ बकवाद बढ़ता है, व्यर्थ के विचार फैलते हैं, जूठा खाकर उसे उगलना-कोई अच्छी बात नहीं है—यह तो कुत्तों से भी बुरा काम है। उस बात को छोड़ दो, विचार करो कि क्या वह व्यक्ति सत्य कह रहा है? क्या ऐसा कह देना आवश्यक है? यदि मैं यह बात अमुक व्यक्ति को कह दूं तो इसका क्या नतीजा होगा? इससे किसको लाभ होगा, और न कह देने से किसको हानि? इन बातों में प्रेम कितना है? घृणा कितनी है? इत्यादि बातों पर विचार कर लो तब कोई सुनी हुई बात अपनी ओठों पर से दूसरे के कान में डालो फिर इसका क्या परिणाम होता है—तुम्हें पश्चात्ताप न होगा और दोष नहीं लगेगा, गवाही नहीं देनी होगी।

यदि तुम्हें किसी व्यक्ति का व्यवहार संकीर्ण मालूम पड़े और तुम उसका तिरस्कार करना चाहो तो पहले विचार कर लो—तुममें उसका तिरस्कार करने की प्रेरणा क्यों हो रही है? उसमें जो संकीर्णता और बुराई है, क्या वह हममें नहीं है? यदि हममें भी वही बात है तो पहले स्वयं आत्मशुद्धि की आवश्यकता है तभी दूसरे पर दोष लगाने का अधिकार होगा। जब तक तुममें वही बुराई है तब तक तुम दोनों बराबरी की श्रेणी में हो। यदि तुममें वह संकीर्णता और बुराई नहीं है तो तुम शुद्ध हो परन्तु उसका तिरस्कार करने से तुममें हीनता आ जायगी। उसको शुद्ध करो। फूल मिट्टी में पड़ कर उसे भी सुगंधित कर देता है। उसे मत कहो, "तुम निकृष्ट और नीच हो, दुष्ट, बेईमान हो।" वरन् उसे इन शब्दों की कल्पना ही न होने दो। उससे महानता और ईमानदारी की बात करो।

"अमुक व्यक्ति ने ऐसा नहीं किया" "अमुक बात अब तक नहीं हुई" "अमुक कार्य हो जाय तब हम दूसरा काम करें", "ऐसा हो जाता हो हम भी ऐसा करते", इत्यादि बातें आलसी व्यक्ति किया करते हैं। जो कुछ तुम्हें करना है इसके लिए दूसरी भूमिकाओं पर ठहरने की स्पृहा

आवश्यकता? भूतकाल की अपूर्णताओं पर कुढ़ते रहने की अपेक्षा वर्तमान को पूर्ण कर भविष्य का निर्माण किया जा सकता है। भूतकाल की घटना तो मुर्दा हो गयी, उसकी कब्र खोदकर हड्डियां निकालने से क्या लाभ? चेतन तत्व का आविष्कार करो जिससे तुम्हारा और संसार का निर्माण हो।

जब तुम किसी व्यक्ति के व्यवहार में संकीर्णता पाओ, किसी से किसी की चुगली सुनो तो उसके अनुसार कोई काम मत कर डालो और न वह बात लोगों में जाहिर करो। इससे तो वह दुर्गुण फैलता है—दुर्गंध की भांति, और सब सुनने देखने वालों के मन को दूषित करता है। इसके बदले उस दुर्गुण को कम करो। दुर्गुण की चर्चा करने से दिन दूना रात चौगुना बढ़ता है। रोग तो औषधि से शान्त होता है, गरम लोहे को ठण्डा लोहा काटता है। आग पानी से बुझती है। क्रोध नम्रता से शान्त होता है। अतः दुर्गुण से दुर्गुण उसी प्रकार बढ़ता है जैसे क्रोधी व्यक्ति से क्रोधपूर्ण बर्ताव करने से और आग में आग डालने के समान होता है। अतएव दुर्गुण की औषधि है सद्गुण।

यदि तुम्हारे बच्चे से, तुम्हारी स्त्री से, तुम्हारे नौकर से अमुक काम नहीं बनता, वरन् इन्होंने कोई काम बिगाड़ दिया और नुकसान होगया हो तो क्रोध करने, तिरस्कार और निकृष्ट आलोचना करने से सबके मनमें हीनता और पश्चाताप के भाव पैदा होंगे। काम बिगड़ जाने से उन्हें पश्चाताप तो है ही, परन्तु तुम्हारे शब्दों से उन्हें बहुत ही चोट पहुंचेगी, इससे वे भयभीत और संकुचित होंगे, आगे वैसा कोई काम करने की उन्हें हिम्मत न होगी—कह देंगे—हम से न होगा—बिगड़ जायगा, टूट जायगा—इत्यादि।

उनका छिद्रान्वेषण करने, उनका तिरस्कार करने, हीन, निर्बुद्धि और निकृष्ट बनाने में तुम्हारे मन में भी संताप से कितना विष उत्पन्न होकर रक्त को विषाक्त करेगा—इसकी कल्पना तुम्हें नहीं है। अस्तु, दूसरों का तिरस्कार करने की अपेक्षा उक्त घटना को यह समझ कर क्षमा कर देना चाहिए कि क्रोध और तिरस्कार से कुछ तो बनेगा नहीं, भविष्य में सुधार के लिए उन्हें शिक्षा दे देनी चाहिए। हंसकर उन्हें अमुक काम ठीक प्रकार से करना सिखला दो तो वे तुम्हें महान् समझेंगे, तुमसे प्रेम करेंगे और सावधानी तथा प्रेमपूर्वक हरेक काम करेंगे।

दूसरे लोग जैसा सोचते हैं जो बोलते या करते हैं—उसकी जिम्मेदारी उन पर है, तुम्हें क्या चिंता? परन्तु तुम जैसा सोचते हो, जो बोलते या करते हो उसकी जिम्मेदारी तुम पर है—उसकी चिन्ता तुम्हें होनी चाहिए।

किसी घटना से उतनी हानि नहीं होती, वरन उस घटना से हम स्वयं अपने विचारों द्वारा अपनी हानि अधिक कर लेते हैं। कोई विपत्ति आने और घटना होने पर कोई रोता चिल्लाता है, दूसरा व्यक्ति उसे छोड़कर निर्माण में लग जाता है। हुआ सो हुआ, अब आगे सुधारो। इन दोनों व्यक्तियों में कितना अन्तर है?

तुम किसी योजना में लगे हो, तो धैर्यपूर्वक प्रयत्न शील रहो, यह मत सोचो, और मत कहो-अरे इतने दिन तो हो गये, न जाने कब यह पूरा होगा। वरन् ऐसा विचार करो—प्रति दिन यह धीरे धीरे अब पूरा हो रहा है।

किसी के विषय में शीघ्र ही अपना मत स्थिर करके निर्णय मत कर दो। कोई व्यक्ति शराब पीता है तो मत कहो कि वह बुरा कर्म करता है, संभव है उसे औषधि रूप में शराब की आवश्यकता हो, परन्तु उसकी दुर्दशा देखकर इतना अवश्य समझ सकते हो कि शराब पीना बुरा नहीं, वरन् अधिक पीना बुरा है।

तुम दूसरों को कैसा समझते हो दूसरे लोग तुम्हें क्या समझते हैं—यह अपनी २ मनोवृत्ति विकास और दृष्टिकोण का प्रतिबिम्ब है। परन्तु तुम वास्तव में क्या हो, इसका विचार कर अपना सुधार और निर्माण करते रहो, संसार के लोग कुछ भी कहें।

धर्म तर्क संगत होता है।

प्राचीन काल में महर्षियों ने जिस धर्म को मोक्ष प्राप्ति का अनन्य साधन बताया था, वही धर्म आज के मानव के समक्ष एक भूलभुलैया के रूप में आकर उपस्थित हो गया है। कोई धर्म को जाल कहकर संतोष प्राप्त करता है तो दूसरा धर्म को मनुष्य मनुष्य में वैमनस्य और घृणा के भावों के जागरण करने का एक साधन कहने में भी नहीं चूकता। सारांशतः आज का मनुष्य धर्म को भयावने और घृणित रूप में देखता है। अब आप विचारेंगे कि क्या सचमुच ही धर्म ऐसी वस्तु है? मैं इसके उत्तर में आप से कहूंगा, यह वास्तव में धर्म का दोष नहीं है, अपितु यह दोष हमारी भ्रमात्मक बुद्धियों का है, जिसके कारण हम वास्तविक धर्म क्या है? यह समझने में असमर्थ रहते हैं। वास्तविक धर्म वही है जो भगवान् मनु ने धर्म शास्त्र में लिखा है—

"यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मोवेदनेतरः"

अर्थात् जो तर्क की कसौटी पर पूर्ण उतरे वही वैदिक धर्म है। संसार में कोई भी व्यक्ति इस बात को समझे बिना धर्म के पालन में समर्थ नहीं हो सक्ता—परिवर्त्तनशील प्रकृतिसाम्राज्य में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो उत्पन्न होकर जीर्ण न हो और जीर्ण होकर पुनर्नवीनता पाने के लिये प्रलय की ओर न जाती हो। धर्म के नियम भी इस संसार से बाहर हैं संसार के परिवर्त्तन के साथ धर्म के नियमों का परिवर्त्तन न होना अनिवार्य है। उदाहरणार्थ समझिये 'जिस कर्म का परिणाम सुख है वही कर्म धर्म है' इस धर्म की परिभाषा को मानकर चलने से हमें ज्ञान होगा कि धर्म के नियमों में भी परिवर्त्तन आता ही रहता है। किसी नियम के पालन करने का परिणाम जब तक सुख है तभी तक वह धर्म की गणना में है और उसी समय तक उसका पालन भी उचित है, परन्तु जब उसका परिणाम सुख से दुःख में परिणत होता दिखाई देने लगे तो वही पाप बन जाता है। जैसे झूँठ बोलना पाप है परन्तु जिस सत्य कथन से महान अनर्थ होता हो तो वह धर्म कहने के योग्य नहीं। लोकमान्य तिलकजीने गीता रहस्य में लिखा है कि—

"यदि हम अपने घर में अकेले पड़े हों और उस समय कोई डाकू आकर हमसे पूछे कि धन कहाँ है तो उस समय का सत्य भाषण कभी भी सत्य भाषण अथवा धर्म में सम्मिलित नहीं हो सक्ता। इसी प्रकार पवित्रता आदि भी लेलीजिये। प्रातःकाल स्नान करना धर्म है परन्तु निमोनिया से पीड़ित के लिये वही अधर्म होजाता है। इतना ही नहीं, जिस विवाह प्रथा में आज विश्व विश्वास करता है और जिसको लोक और परलोक का साधक समझता है वह प्रथा श्वेतकेतु के पूर्व कहां थी? किन्तु क्या? आज संसार को कोई भी विवेक बुद्धि रखने वाला जन विवाह प्रथा को तोड़कर ऋतुदाम पर्यन्त पुरुष स्त्री सम्बन्ध रखने की पूर्व प्रथा का जारी रखना धर्म या उचित बना सक्ता है? उत्तर में कहना होगा कि नहीं। इतिहासों या पुराणों में देखो 'श्रीराम पिता की आज्ञा पालन करने पर बड़े त्यागी व मर्यादा पुरुषोत्तम माने गये, परन्तु प्रह्लाद तो पिता की आज्ञा भंग करने पर ही परम भक्त माने गये। एक अक्षर भी प्रदान करने वाले गुरू का सामना करना अन्य अवसरों पर भले ही महा पाप हो परन्तु महाभारत के युद्ध में तो भगवान् कृष्ण ने यही उपदेश दिया था "कि हे अर्जुन! इस समय गुरुओं पर प्रहार न करके तू युद्ध से मुख मोड़ेगा तो तेरा सारा क्षात्र धर्म मिट्टी में मिल जायगा। शास्त्रकारों ने साफ तौर पर लिखा है कि "देश, काल पात्र व प्रवृत्ति, अनुसार

धर्म से अधर्म और अधर्म से धर्म तथा अर्थ से अनर्थ और अनर्थ से अर्थ किया जा सका है और किया जाता है।

अब यह दोहराने की आवश्यकता नहीं कि- "लौकिक धर्म किसी एक बात पर नहीं रहता"।

उसके लिए परिस्थिति के अनुसार आगे पीछे के कई विचार करने पड़ते हैं। मनुजी लिखते हैं कि—

"श्रुतिः, स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥"

अर्थात् वेदों के वचन, धर्मशास्त्रों के कथन, श्रेष्ठों के चलने और अपनी आत्मा की स्वीकृति, ये चार धर्म की कसौटियां हैं। यानी धर्म संबंधी जब कोई जटिल समस्या उपस्थित हो तो वेदों को पढ़िए धर्म शास्त्रों को देखिए इनसे भी समस्या हल न हो तो इतिहास के पृष्ठ उलटिये और देखो ऐसी समस्या आने पर हमारे पूर्वजों ने क्या किया था? इस पर भी यदि मन का संदेह निरस्त न हो तो अपनी अन्तरात्मा की पुकार सुनिए और देखिए कि अपनी अन्तरात्मा इसे धर्म कहती है या अधर्म कह रही है। बस अन्तिम धर्म की यही कसौटी है इस पर जो पूर्ण उतरे उसे करो और जो इस कसौटी पर अपूर्ण उतरे उसे कभी करने का साहस न कीजिए नहीं तो धर्म के स्थान पर अधर्म होगा और कर्त्ता को अपार दुखसागर में डुबा देगा।'

स्वास्थ्य पर कपड़ों का प्रभाव।

यों तो मनुष्य का प्रत्येक कार्य इसलिए होता है कि वह स्वस्थ रहे और सुखी रहे। और रात दिन अपने उस लक्ष्य पर बढ़ता रहे जिसे उसने निश्चित कर रखा है।

स्वास्थ्य और सुख दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं। स्वास्थ्य के बिना सुख नहीं मिलता और सुख के बिना स्वास्थ्य कैसा?

स्वास्थ्य के लिए खाना-पहनना एक आवश्यक बात मानी जाती है। अन्न और वस्त्र का प्रभाव सिर्फ शरीर पर ही पड़ता हो ऐसा नहीं, मन पर भी पड़ता है। और वास्तविक सुख और स्वास्थ्य का सम्बन्ध शरीर की अपेक्षा मन से अधिक है। मन स्वस्थ हो तो शरीर भी स्वस्थ रहता है और सुख तो शरीर को नहीं, मन को ही होता है लेकिन मन को स्वस्थ रखने के लिए शरीर को स्वस्थ रखना भी आवश्यक हो जाता है।

स्वास्थ्य का सम्बन्ध प्रकृति से है। जो व्यक्ति जितना अधिक प्रकृति के सम्पर्क में रहता है, अपने आपको प्राकृतिक बनाता है उतना अधिक स्वस्थ रहता है।

प्रकृति ने शरीर को जिस रूप में बनाया है उसी रूप में यदि उसे रखा जावे तो वह प्रकृति के अनुरूप होने के कारण अधिक स्वस्थ रहता है, लेकिन यदि उसे पहना ओढ़ा कर प्रकृति की गर्मी सर्दी की मात्रा से उसकी गर्मी सरदी की मात्रा घटा बढ़ा दें तो शरीर में अनेकों विकार समा जाते हैं। विकार का सबसे बड़ा लक्षण तो यही है कि शरीर प्रकृति दत्त शीत, उष्ण को सहन न कर सके।

गर्मी सर्दी का अनुभव त्वक् इन्द्रिय से होता है। त्वक् इन्द्रिय-चमड़ा-वायु के आघातों से गर्मी तथा सर्दी का अनुभव करता है। अनुभव की मात्रा का सम्बन्ध शरीर की भीतरी गर्मी व सर्दी से होता है। शरीर की भीतरी गर्मी से यदि बाहर की गरमी अधिक होती है तो वह गर्मी का अनुभव करता है और यदि बाहर की गर्मी कम होती है तो ठण्डक अनुभव करता है।

गर्मी और सर्दी का यही रहस्य है । शरीर के अन्दर की गरमी का सम्बन्ध रक्त से है और रक्त का सम्बन्ध खाद्य पदार्थों से है । इसलिए जो अन्न मानव के लिए जितने अधिक प्राकृतिक एवं स्वाभाविक होते हैं वे गर्मी को उसी अनुपात से प्रकृति के उपयुक्त बनाये रखते हैं । अप्राकृतिक खाद्य पदार्थ प्रकृति के अनुकूल रखने में समर्थ नहीं होते प्रकृति के विरुद्ध चलना ही तो विकारों को निमन्त्रण देना है । इसलिए स्वाभाविक खाद्य का ही उपयोग करना चाहिए ।

जब स्वाभाविक खाद्य की कमी होजाती है तब शरीर भी स्वाभाविक शक्ति सम्पन्न नहीं होता, अशक्ति बढ़ने लगती है और अपनी उस शान्ति के लिए जिसे प्राकृतिक ढंग से रहने पर अक्षुण्ण रखा जासकता था, मनुष्य अप्राकृतिक बन्धन में पड़ जाता है । ठण्ड और गरमी के नाम पर कपड़ों के भार को शरीर पर लादना आरंभ कर देता है ।

यह बोझ तब और बढ़ जाता है जब मनुष्य शरीर और ऋतु चर्या को भूलकर दिखावे की दुनियां में पैर रखता है । क्यों कि मनुष्य अपनी सम्पत्ति और अपने गौरव का प्रदर्शन कभी कभी क्या, प्रायः खाने और पहरने से ही करता है । यह सारी चीजें फैशन या प्रदर्शन का रूप धारण करके मनुष्य को प्रकृति से एकदम अलग कर देती हैं । एक दो उदाहरण लीजिये । तेज गरमी पड़ रही है, शरीर को कपड़े सुहाते नहीं हैं फिर भी चूड़ीदार पाजामा, बनियान, कुरता, जाकट और कोट पहन कर बाबू साहब चले जारहे हैं । पसीना चौधारा बह रहा है । जब लौट कर वापस आते हैं, सारे कपड़े उतार फेंकते हैं, गर्मी जो लग रही है । अब बताइए कि यदि ये सब न पहने जाते तो क्या बिगड़ जाता । परन्तु नहीं, फैशन जो है । नाम जो धरा जायगा, लोग उंगलियां जो उठावेंगे । ये सब क्या है आत्मा की कमजोरी का चिन्ह । तो प्रकृति से अलग होने पर शरीर और मन ही कमज़ोर होता है ऐसा नहीं है, आत्मा भी कमजोर होजाती है ।

कपड़े का एक मात्र उद्देश्य शरीर रक्षा है, प्राचीन भारत के भारतीय इस बात को समझते थे । हमें भारत के प्राचीन इतिहास में कहीं सिले हुए कपड़ों का विवरण नहीं मिलता है । गृहस्थ या राजपरिवार के लोग धोती, दुपट्टा का उपयोग करते थे । ब्रह्मचारी वस्त्र पहनते थे इसका कोई उल्लेख नहीं । उनकी मौंजी और मेखला का ही वर्णन मिलता है । यह तो लंगोटी हुई । पेड़ की छाल भोजपत्र जैसी या मूंज का कोई वस्त्र । पर सारा शरीर वस्त्र विहीन । वानप्रस्थी और संन्यासी भी लंगोटी के अतिरिक्त और कुछ नहीं रखते थे । वे सबके सब ही स्वस्थ, सहिष्णु और सुखी होते थे । मन बड़े विशाल, आत्मा पूर्ण उन्नत । और आज भोजन वस्त्र के, फैशन और स्वाद के दास हम भारतवासी । एक बार मुकाबला तो कीजिये ।

आज इस सबको छोड़ने की सिफारिश तो नहीं की जासकती लेकिन खाने और कपड़े का लक्ष्य शरीर रक्षा है, इसलिए खाते और पहनते समय लक्ष्य को सामने रखने की बात तो कही ही जासकती है । शरीर रक्षा के लिए जितने कपड़े चाहिए, जैसे चाहिए उतने और वैसे ही पहनने चाहिए और फैशन को तिलाञ्जलि दे देनी चाहिए ।

कपड़े हों तो ढीले जिसमें शरीर को सूर्य का ताप, वायु भली भांति मिल सके । कपड़ों से शरीर को कैद करने की आवश्यकता नहीं है । शरीर जब जर्मी सरदी सहने के योग्य होजावे और उसे उनसे बचाने की आवश्यकता अनुभव न हो तभी समझना चाहिए कि मनुष्य प्रकृति के अत्यन्त समीप है और अब उसने विकारों पर विजय प्राप्त करली है ।

बस, प्रकृति का सामीप्य लाभ यदि करना है तो यह कभी न भूलना चाहिये कि मनुष्य जीवन कपड़े के लिए नहीं है किन्तु कपड़े मनुष्य के लिए हैं ।

'अखंडज्योति' का यह रत्नभण्डार आपके सामने उपस्थित है
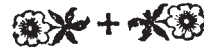
चार मासमें चार विषयों की इन अमूल्य पुस्तकों का आप स्वाध्याय कीजिए। फिर देखिए कि इस ज्ञान के आधार पर आपको कैसे २ अद्भुत सांसारिक और आत्मिक लाभ प्राप्त होते हैं इतनी सस्ती और इतनी प्रमाणिक पुस्तक अन्यत्र नहीं मिल सकतीं।

आरोग्य शास्त्र का निचोड़——प्रथम मास का पाठ्यक्रम।

इन पुस्तकों के आधार पर खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त किया जासकता है और प्राप्त हुए स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा जासकता है। यह पुस्तकें पाठक को एक ऐसा कुशल डाक्टर बना देती हैं जो अपना और दूसरों का इलाज सफलता पूर्वक कर सकता है।

१ सूर्य चिकित्सा विज्ञान—सूर्य की प्रचण्ड रोग नाशक शक्ति से कठिन रोगों की चिकित्सा।

२ प्राण चिकित्सा विज्ञान—मनुष्य के शरीर में रहने वाली विद्युत शक्ति से समस्त रोगों का इलाज।

३ स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या—आध्यात्मिक सरल साधनों द्वारा तन्दुरुस्त और खूब सूरत बनने के अद्भुत उपाय।

४ भोग में योग—शीघ्र पतन, स्वप्नदोष, प्रमेह, नपुंसकता आदि रोगों को योग साधनों से दूर करने और मनचाही स्तम्भन शक्ति प्राप्त करने की गुप्त विधियां।

५ बुद्धि बढ़ाने के उपाय—जो स्मरण शक्ति बढ़ा कर बुद्धिमान बनना चाहते हैं उनके लिये यह पुस्तक कल्पवृक्ष के समान है।

६ आसन और प्राणायाम—इन दोनों साधनों की विज्ञान सम्मत विवेचना और साधन शिक्षा।

७ तुलसी के अमृतोपम गुण—तुलसी के पौधे में वैज्ञानिकों ने उसमें अमृत के समान चमत्कारी स्वास्थ्य वर्धक गुण पाये हैं इन गुणों का वर्णन।

८ महान जागरण—आत्म विश्वास द्वारा जीवन की काया पलट करने का मनोविज्ञान शास्त्र सम्मत मार्ग दिखाया गया है।

९ तुम महान हो—अपनी महानताको खोजने प्राप्त करने, बढ़ाने और सुरक्षित रखने की वैज्ञानिक प्रणाली।

१० घरेलू चिकित्सा—हर रोग के ऊपर शर्तिया फायदा करने वाले छोटे छोटे नुसखे दिये हैं।

११ बिना औषधि के कायाकल्प—प्राकृतिक चिकित्सा तथा प्राकृतिक आहर बिहार के द्वारा निरोग और बलवान बनने की विधि।

१२ पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगों का निवारण—मिट्टी, पानी, हवा, आग, आकाश द्वारा हर रोग की अद्भुत चिकित्सा प्रणाली।

१३ दीर्घ जीवन के रहस्य—संसार के दीर्घ जीवी मनुष्यों द्वारा बताये हुए, अनुभव, नियम और सिद्धान्तों की विवेचना।

१४ नेत्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा—बिना ओपरेशन व बिना दवा खाये प्राकृतिक उपाय द्वारा, नेत्र रोग दूर करके ज्योति बढ़ाने और चश्मा छुड़ाने के उपाय।

१५ स्वप्नदोष की मनो वैज्ञानिक चिकित्सा जो लोग स्वप्न दोष से दुखी हैं। उनके लिए यह पुस्तक कल्प वृक्ष के समान है।

१६ दूध की आश्चर्य जनक शक्ति—दूध पृथ्वी का अमृत है। इसे विधि पूर्वक सेवन करने मनुष्य कायाकल्प कर सकता है।

जीवन विज्ञान की शिक्षा—द्वितीय मास का पाठ्यक्रम।

इस विज्ञान को जान लेने से जीवन यात्रा की अधिकांश कठिनाइयां दूर हो जाती हैं और ऐसे रहस्य मालूम होजाते हैं जिसको पाठक को ऐसा लगता है मानो किसी अज्ञात गुप्त आध्यात्मिक धन की प्राप्ति हुई हो।

१ मनुष्य शरीर की बिजली के चमत्कार—शरीर की बिजली से होने वाले आश्चर्य जनक कार्यों का वैज्ञानिक विवरण।

२ धनवान बनने के गुप्त रहस्य—धन कुवेरों द्वारा कार्य रूप में आये हुए ऐसे सिद्धान्तों का वर्णन है जिन पर चलने से आप भी धनवान बन सकते हैं।

३ पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विद्या—मन चाही सन्तान प्राप्त करने के सारे रहस्य इस पुस्तक में खोलकर रख दिये हैं।

४ मरने के बाद हमारा क्या होता है—मृत्यु से लेकर नये जन्म तक जीव जिन परिस्थितियों में रहता है उनका महत्वपूर्ण विवेचन।

५ मित्र भाव बढ़ाने की कला—अधिक संख्या में, अच्छे और सच्चे मित्र प्राप्त करने के रहस्य।

६ आकृति देखकर मनुष्य की पहचान—निर्धारित विषय को ऐसे अच्छे सुबोध ढंग से समझाया गया है कि हर कोई लाभ उठा सकता है।

७ संजीवनी विद्या—जिन्दगी किस तरह जीनी चाहिये इस प्रश्न का संतोष जनक समाधान

८ अमृत पारस और कल्पवृक्ष की प्राप्ति—यह तीनों तत्व मनुष्य के अन्दर हैं, इस पुस्तक में बताई रीति से यदि कोई उनका उपयोग करे तो देवताओं के समान समृद्ध हो सकता है।

९ हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं—स्वप्न दीखने के कारण उनके हानि लाभ, स्वप्नों द्वारा अदृश्य बातों की जानकारी दुःस्वप्नों का निवारण।

१० विचार करने की कला—मनुष्य जैसे विचार करता है वैसा ही बन जाता है इस तथ्य को ध्यान में रखकर अच्छे विचारों को अपनाने और कुविचारोंको त्यागने की रीतियां समझाई हैं।

११ हम वक्ता कैसे बन सकते हैं—चतुर वक्ता, कुशल व्याख्यान दाता बनने की इच्छा रखने वालों के लिए यह बड़े ही काम की पुस्तक है।

१२ लेखनकला—लेख, पुस्तकें एवं कविता लिखने की कला सीखने वालों के लिए यह पुस्तक अनुभवी गुरु का काम देती है।

१३ सफलता के तीन साधन—मनुष्य किस प्रकार गुणों से कठिन कार्यों को पूरा कर सकता है यह विज्ञान इस पुस्तक में बड़े हृदय ग्राही रूप से समझाया गया है।

१४ शिखा और सूत्र का रहस्यमय विवेचन—चोटी और जनेऊ, हिन्दू धर्म के दो प्रमुख चिन्ह हैं। इस पुस्तक में इन दोनों का गुप्त रहस्य, महत्व और लाभ सविस्तार बताया गया है।

१५ दैवी संपदायें—धन दौलत पृथ्वी की संपदा है। इससे सांसारिक सुख मिलते हैं। पर दैवी संपदाएं वे सद्गुण हैं, जिनसे लौकिक और पारलौकिक सुख शान्ति मिलती है उनका वर्णन।

१६ कुछ धार्मिक प्रश्नों का उचित समाधान—श्राद्ध, तीर्थ, दान, देववाद आदि विषयों की शङ्काओं का बुद्धि संगत समाधान।

ब्रह्म विद्या का अमृतोपम ज्ञान—तृतीय मास का पाठ्यक्रम।

ब्रह्मविद्या संसार की सबसे बड़ी विद्या है। इस विद्या को इन पुस्तकों में ऐसे सरल सुबोध ढंग से तर्क और प्रमाणों के आधार पर समझाया गया है कि एक बालक भी भली प्रकार समझ सकता है।

१ ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है ? ईश्वर सम्बन्धी सम्पूर्ण शंकाओं का वैज्ञानिक समाधान एवं ईश्वर साक्षात्कार के प्रामाणिक साधन।

२ क्या धर्म ? क्या अधर्म ?—धर्म अधर्म की गंभीर एवं गूढ़ गुत्थी को बड़े सरल और हृदयग्राही ढंग में सुलझाया है।

३ गहना कर्मणो गतिः—कर्मों का उलटा फल मिलते देख कर बड़ा भ्रम पैदा होता है। उन सब भ्रमों को यह पुस्तक निवारण कर देती है।

४ जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश—चौरासी लाख योनियों में भ्रमण, जन्म मरण का चक्कर, पुनर्जन्म, स्वर्ग मुक्ति आदि की विवेचना।

५ पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा—इसमें धर्म ग्रन्थों के चुने हुए बड़े ही मार्के के शिक्षाप्रद श्लोक अर्थ समेत पांच अध्यायों में संग्रह हैं।

६ शक्ति संचय के पथ पर—सुख की जननी की शक्तियों के संचय का पथ प्रदर्शन।

७ आत्म गौरव की साधना—अपना गौरव एवं महानता स्थिर रखने तथा बढ़ाने के सुदृढ़ सिद्धान्तों का दिग्दर्शन।

८ प्रतिष्ठा का उच्च सोपान—घर और बाहर सर्वत्र प्रतिष्ठा, आदर, सम्मान, श्रद्धा, प्राप्त करने का मार्ग इसमें बताया गया है।

९ आन्तरिक उल्लास का विकाश—अन्तःकरण में सच्चे सुख, सन्तोष, शान्ति तथा उल्लास प्राप्त करके एवं जीवन को आनन्द मय बनाने की शिक्षा।

१० आगे बढ़ने की तैयारी—भीतरी और बाहर जगत में सब प्रकार की उन्नति करने की योजना।

११ अध्यात्म धर्म का अवलम्बन—मजहब तो अलग २ हैं पर सबकी आत्मा का एक ही धर्म है। उसी एक आत्म धर्म का विवेचन।

१२ ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन—योग, मन्त्र, तन्त्र, देव, सिद्ध, वरदान, सिद्धि आदि आदि का वैज्ञानिक विवेचन।

१३ ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग—सदाचार, सत्कर्म और परोपकार से ईश्वर और स्वर्ग की प्राप्ति की शास्त्रीय पुष्टि।

१४ विवेक सतसई—कबीर, रहीम, तुलसीदास आदि के विवेक उत्पन्न करने वाले ७०० दोहे।

१५ अध्यात्म शास्त्र—अध्यात्म विद्या की दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, तार्किक और धार्मिक दृष्टि से विवेचना की गई है।

१६ अध्यात्म विद्या का प्रवेश द्वार—ईश्वर और परलोक का विवेचन व उसकी प्राप्ति का मार्ग।

१७ वैज्ञानिक अध्यात्मवाद—अध्यात्मवाद के हर पहलू पर इस पुस्तक में वैज्ञानिक रीति से प्रकाश डाला गया है।

चमत्कारी साधनाएँ—चतुर्थ मास का पाठ्यक्रम।

योगी लोग वर्षों कठिन परिश्रम के पश्चात् जिन शक्तियों को प्राप्त करते हैं, उन्हें सुगमता पूर्वक घर रह कर स्वल्प काल में प्राप्त करने की यह पुस्तकें सीधी पगडंडियां है।

१ मैं क्या हूं—आत्मा का प्रत्यक्ष दर्शन करने की कुछ सरल साधन-विधियों का वर्णन।

२ परकाया प्रवेश—मैस्मरेजम के ढंग पर आत्म शक्ति को दूसरे के शरीर में प्रवेश करके उसे प्रभावान्वित करने की विद्या।

३ स्वर योग से दिव्य ज्ञान—स्वरोदय विद्या द्वारा गुप्त और भविष्य की बातों को जान लेने की रहस्य पूर्ण साधना।

४ वशीकरण की सच्ची सिद्धि—दूसरों को वश में करने के सच्चे और हजारों बार आजमाये हुए प्रयोगों का वर्णन।

५ जीव जन्तुओं की बोली समझना—मूक पशुओं की अस्पष्ट भाषा एवं शकुन विद्या का रहस्य।

६ ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग—इन तीनों योगों को हर गृहस्थ सुविधा पूर्वक नित्य व्यवहारिक जीवन में कैसे उतारे? इसका उत्तर।

७ यम नियम—अष्टांग राज योग की पहली सीढ़ी। ५ यम और ५ नियमों की सरल साधना।

८ प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—योग की इन तीनों कठिन साधनाओं को नये ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि हर कोई इनका अभ्यास सुगमता पूर्वक कर सके।

९ मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा—मैस्मरेजम विद्या के सब रहस्य इस छोटी पुस्तक में अनुभवों के आधार पर लिखे गये हैं।

१० हस्त रेखा विज्ञान—योरोप के सुप्रसिद्ध पामिस्ट डा० शेरो के सिद्धान्तों द्वारा हस्त रेखा संबंधी महत्व पूर्ण जानकारी इसमें दी है।

११ गायत्री की चमत्कारी साधना—वेदमाता गायत्री की मन्त्र साधना के अनेकों विधान और उनके अद्भुत लाभों का दिग्दर्शन कराया है।

१२ गृहस्थ योग—गृहस्थ धर्म का पालन करना एक योग साधना है। इस साधना से अपना घर स्वर्ग के समान आनन्द मय बन सकता है।

१३ प्रार्थना के चमत्कार—ईश्वर प्रार्थना का विज्ञान, सिद्धान्त, रहस्य, महत्व तथा लाभ

१४ विचार संचालन विद्या—बेतार की इस आध्यात्मिक तार वर्की द्वारा दूर २ रहने वाले व्यक्ति अपने विचार एक दूसरे के पास भेज सकते हैं

१५ सुखी वृद्धावस्था—इन उपायों से वृद्धावस्था बड़ी सुख मय बन सकती है।

१६ आत्मोन्नति का मनोवैज्ञानिक मार्ग—उपाय इन आत्मोन्नति में बड़ी सहायता मिलती है।

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य छै छै आना है। ६) रु० से अधिक की पुस्तकें लेने पर डाक खर्च माफ। कमीशन के लिये व्यर्थ लिखा पढ़ी न करें।

रजिस्टर्ड नं० ए० ३६७ 'अखंड ज्योति'

धन का उपयोग।

(ले०—श्री "विश्वात्मा")

(१)

धनी हैं आप तो धन से, शिवालय हैं बना सकते।
मगर हृद्धाम में शिव को, नहीं धन से बिठा सकते॥
भले ही आप धन देकर, मँगालें मूर्ति माधव की।
हृदय में आपके माधव, कभी धन से न आ सकते॥

(२)

धनव्यय नित्य करके रामलीला कीजिए लेकिन—
मनोहर भक्ति रघुवर की न धन से आप पा सकते॥
हजारों यज्ञ और बलिदान धन से कर लिए तो क्या।
न धन द्वारा कभी निर्वाण पद पर आप जा सकते॥

(३)

सुगम है धन से राजा के यहां से पदवियां पाना।
प्रजा में आप धन से मान रत्ती भर न पा सकते॥
उठाकर वज्र धन का, शत्रु को जीता तो क्या जीता।
क्षमा के शस्त्र से ही आप हैं रिपु को मिटा सकते॥

(४)

नचा सकते हैं माना आप धन से अच्छों अच्छों को,
मगर क्या काल को भी आप हैं धन से नचा सकते?
मिला है आपको जो धन दिया वह सब है ईश्वर ने।
न उसको आप अपने स्वार्थ—साधन में लगा सकते॥

\+ \+ \+ \+

उचित यह है कि धन को कीजिए व्यय अच्छे कामों में।
न मुट्ठी बांधकर हैं आप इस धन को बचा सकते॥